श्री गिरनार महातीर्थ
मूलनायक श्री नैमिनाथ भगवान

चलो गिरनार चलें...

(जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संप्रदाय की दृष्टि में गिरनार माहात्म्य)

लेखक/संकलन

शासनप्रभावक परमपूज्य पंन्यास चंद्रशेखर विजयजी गणिवर्य के
तपस्वी शिष्यरत्न
मुनि धर्मरक्षित विजयजी के
शिष्य
मुनि हेमवल्लभ विजयजी

हिन्दी अनुवादिका

प्रशांतमूर्ति आ. राजेन्द्रसूरीश्वरजी आज्ञानुवर्ति
विद्ववर्या सा. अनंतकिर्तिश्रीजी की शिष्या
सा. संस्कारनिधिश्रीजी

प्रकाशक

श्री गिरनार महातीर्थ विकास समिति

हेमाभाईनो वंडो, उपरकोट रोड, जगमाल चोक, जुनागढ़ – ३६२००१

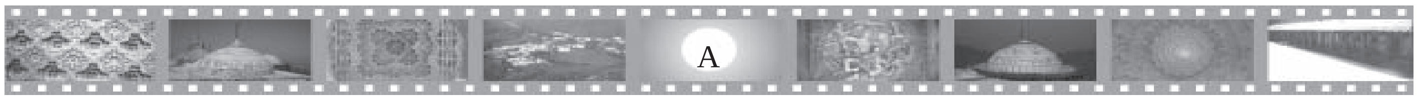

किंमत : २५-०० रुपये

प्राप्ति स्थान :

श्री गिरनार महातीर्थविकास समिति
हेमाभाई का वंडा, उपरकोट रोड,
जगमाल चोक, जुनागढ़ ३६२००१
फोन : ०२८५-२६२२९२४

श्री नेमिजिन सेवा ट्रस्ट
भवनाथ तलेटी,
जुनागढ - ३६२००१
फोन : ०२८५-२६२०२५१

धर्मरसिक तीर्थवाटिका
आ. नररत्न सू. मार्ग
एकता टावर के पास,
वासणा बेरेज रोड, वासणा
अहमदाबाद-३८० ००७
फोन : ०७९-२६६०८८३७

वर्धमान संस्कार धाम
भवानी कृपा बिल्डींग, १ला माला,
११२, जगन्नाथ शंकर शेठ रोड,
गिरगाम चर्च के पास, मुंबई-४०० ००४
फोन : ०२२-२३६७०९७४

समकित ग्रुप
जैन देरासर, जवाहरनगर,
गोरेगांव (वेस्ट) मुंबई

अखिल भारतीय संस्कृति रक्षकदळ
सुभाष चौक, गोपीपुरा, सुरत

महेता डेरी
तलेटी रोड, पालीताणा

जयेशभाई चुडगर
सोहम ज्वेलर्स
जैन देरासर के पास,
अेम.जी.रोड., बरोडा,
फोन : ९४२५३ ८५३१३
०२६५-२४२५०६७

सूर्यकान्त हीरालाल शाह
(दिपकभाई)
सोमवार पेठ, शराफ कहा,
मिरज-महाराष्ट्र
फोन : ०२३३३-२२२३३७७
मो. ०९४२३२६९४८२

सचिन पुनमीया
पुनमीया क्रीएशन
११२७, आर.जी.स्ट्रीट, कोइम्बतुर
मो. -९३४४८५५०५०

समरथमलजी रीखबदासजी
११-१६-१, शिंगाराजुवारी
एस्टेट नं. २,
बिजयवाडा-आन्ध्रप्रदेश,
पीन-५२०००१

विरेन्द्रभाई एम. वडालीया
वडालीया निवास
८/१४६४, गुजराती रोड,
कोचीन-२
फोन : ०४८४-२२२१३१३
मो. ०९३८८६०९७३३

दीपक पी. जैन
४१, रघुनायकुलु स्ट्रीट,
पार्क टाउन,
चेन्नई-६००००३
मो. ०९३८५५२१०००

दीपचंद पी. जैन
नं. ३, सुरेश कॉम्पलेक्ष,
१ला क्रोस अप्पाजी राव लेन,
सी.टी. स्ट्रीट क्रोस
बैगलोर-२
मो. ०९४८०१९८९३०
घर ०८०-२२२५१३०३
ओ. ०८०-२२२१०१९८

मुकेशभाई
राजेन्द्र मेडीकल एजन्सी
५-३-७७४ ओलु तोपखाना
ओसमान गंज के सामने,
हैदराबाद-५०००९२

रमेशभाई ओसवाल
श्री फार्मा,
९/४, प्रो. नं. ३१५
धारेनगर, सांगरी, पूणे-२७
फोन : ०२०-७२८००१६
मो. ९३७३१००६८१७

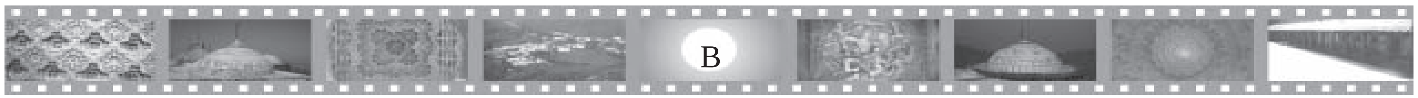

सैंकडों वर्षों के इतिहास में सर्वप्रथम बार
श्री गिरनार महातीर्थ की गोद में
सामुहिक चातुर्मासिक आराधना के प्रेरणा-निश्रादाता,
सहसावन तीर्थोद्धारक, साधिक ३००० उपवास तथा ११५०० आयंबिल तप के
घोर तपस्वी, श्री संघहितार्थ घोर अभिग्रहधारी
परमपूज्य आचार्यश्रीमद्विजय हिमांशुसूरीश्वरजी महाराज की
पुण्यस्मृति निमित्त
श्रद्धांजलि...

प्राक्कथन

चौदह राजलोक में लोकोत्तर ऐसे जिनशासन के तीन भुवन में सर्वोत्कृष्ट तीर्थ रूप शत्रुंजय और गिरनार महातीर्थ की गणना होती है ।

वर्तमान चतुर्विध संघ में तीर्थाधिराज श्री सिद्धगिरि महातीर्थ की महिमा सुप्रसिद्ध है लेकिन महामहिमावंत–महाप्रभावक श्री गिरनार महातीर्थ के माहात्म्य से सकल जैन श्वेतांबर मूर्तिपूजक संघ लगभग अज्ञात है । इस कारण पिछले कितने सालों से जाने–अनजाने में भी इस महातीर्थ की उपेक्षा हो रही है यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है ।

आज जगप्रसिद्ध ऐसे शत्रुंजय गिरिराज की यात्रा करने हर साल लाखों जैन श्वेतांबर भावुक वर्ग जातें हैं, लेकिन वैसे ही जगप्रसिद्ध श्री रैवतगिरीराज गिरनार महातीर्थ की यात्रा करने हर साल मुश्किल से ५० हजार जैन श्वेतांबर भावुकजन जाते हैं ।

भारतभर के विविध धर्म–संप्रदायों में अपने–अपने धर्मग्रंथों में अनेक प्रकार से गिरनार महातीर्थ की महिमा का वर्णन किया गया है । आज हिन्दु समाज में वैष्णव, ब्राह्मण, शिवभक्त, रामभक्त, दत्तभक्त, अंबाभक्त, बौद्धभक्त आदि तथा जैन शासन में दिगंबर और श्वेतांबर धर्म संप्रदायों के अनेक भक्तजनों की श्रद्धा का प्रतिक यह गिरनार गिरिवर बना हुआ है ।

विविध धर्म संप्रदाय के गिरनार विषय में विविध माहत्म्य के कारण पूर्वकाल से, कितने ही स्थानों का हक और कब्जा लेने के लिए अनेक वाद–विवादों के तुफानों के बीच में भी गढ गिरनार आज भी अडग बनकर खडा है । लाखों श्रद्धावंत भक्तजनों की शांति और समाधि का स्थान बना हुआ है ।

मेरे भवोदधितारक गुरुदेवश्री प.पू. पं. चंद्रशेखर विजयजी महाराज साहेब की भावना अनुसार सहसावन तीर्थोद्धारक, साधिक ३००० उपवास और ११५०० आयंबिल के घोर तपस्वी स्व. पूज्यपाद आचार्य हिमांशुसूरीश्वरजी महाराज साहेब की जीवन संध्या के १३–१३ वर्ष तक उनके शीतल सहवास में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है ।

श्री शत्रुंजय और गिरनार महातीर्थ के परम उपासक, अगाध शासनराग धारण करने वाले पूज्यपादश्री की शासन के विविध प्रश्नों की वेदनाओं को बहुत ही नजदीक से देखा है । जिसमें कितने ही वर्षो से जैन श्वेतांबर समाज द्वारा इस गिरनार महातीर्थ

की हो रही उपेक्षा के कारण वो अत्यंत व्यथित थे । इसलिए जीवन के अंतिम दिनों में भी समस्त जैन श्वेतांबर भव्यजीव महातीर्थ गिरनार की महिमा को पहचाने और योग्य न्याय मिले ऐसे साहित्य की रचना हो ऐसी भावना मेरे पास प्रकट की। उसी दिन उनका आशीर्वाद लेकर गिरनार महातीर्थ के विषय पर, एक दलदार ग्रंथ के प्रकाशन के लिए, संकल्पपूर्वक लेखन कार्य शुरु किया ।

आज तक अनेक पुस्तक आदि के अभ्यास से मिली हुई जानकारी को ग्रंथबद्ध करना शुरू किया ही था उसमें गिरनार की वर्तमान परिस्थिति को ध्यान में रखकर तात्कालिक, संक्षिप्त रूप में जैन श्वेतांबर मूर्तिपूजक संप्रदाय की दृष्टि से, गिरनार की महिमा का वर्णन करनेवाली एक पुस्तिका लिखनी चाहिए ऐसी सूचना अनेक पूज्यों और श्रावक वर्ग की ओर से आयी।

विविध ग्रंथों के वांचन द्वारा जैन श्वेतांबर मूर्तिपूजक संप्रदाय की दृष्टि से गिरनार महातीर्थ की जो भी महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई है उसके आधार पर इस तीर्थ के महाप्रभाव को लोकयोग्य भाषा में संक्षिप्त में वर्णन करने का अल्प प्रयास किया है। वाचक वर्ग का गिरनार महातीर्थयात्रा करने के उल्लास में ये पुस्तक विशेष रूप से वृद्धिकारक बने और सबके हृदय में तीर्थभक्ति की भावना को बढ़ाने के लिए सहायक बने । यही अभिलाषा ।

अंत में इस पुस्तिका के लेखन दरमियान सहायक बने हुए अनेक ग्रंथ आदि के लेखक – प्रकाशक आदि का मैं अत्यंत ऋणी हूँ । जिनाज्ञा के विरुद्ध कुछ भी लिखा गया हो तो क्षमा चाहता हूँ ।

इस पुस्तिका के वांचन द्वारा अनंत तीर्थंकरों की सिद्धभूमि की आराधना द्वारा आप सभी को भी सिद्धपद मिले इस मंगल मनोकामना के साथ विराम लेता हूँ ।

श्री नेमिनाथ दीक्षा कल्याणकदिन
श्रावण सुद, ६ सं. २०६५
गिरनार तलेटी

लि. भवोदधितारक गुरुपादपद्मरेणु
मुनि हेमवल्लभ विजय

संदर्भसूचि

१. प्रभावक चरित्र

२. प्रबंध चिंतामणी

३. सम्यक्त्व सप्ततिका

४. रैवतक उद्धार प्रबंध

५. प्रबंध कोश

६. चतुर्विशति प्रबंध

७. कुमारपाल प्रबंध

८. कुमारपाल प्रतिबोध

९. वस्तुपाल चरित

१०. रैवतगिरिकल्प संक्षेप

११. रैवतगिरि कल्प

१२. उज्ज्यंत स्तव

१३. उज्ज्यंत महातीर्थ कल्प

१४. गिरनार कल्प

१५. श्री गिरनार महातीर्थ कल्प

१६. तीर्थमाला संग्रह

१७. सुकृतसागर

१८. रैवतगिरि रासु

१९. रैवतगिरि स्पर्शना

२०. शत्रुंजय माहात्म्य

२१. गिरनारना गीतगायको

२२. गरवीगाथा गिरनार की

राग : सौ चालो सिद्धगिरि जईये...

सौ चालो गिरनार जईये, प्रभु भेटी भवजल तरीये;
सोरठ देशे तरवानुं मोटुं जहाज छे.... सौ० १

ज्यां सन्यासीओ होवे, धर्मभावथी गिरिवर जोवे;
अेवुं सुंदर जूनागढ गाम छे.... सौ० २

ज्यां गिरनार द्वार आवे, विविध भावना सौ भावे;
अेवुं मोहक रळीयामणुं आ स्थान छे.... सौ० ३

ज्यां तळेटी समीपे जातां, आदेश्वरना दर्शन थातां;
धर्मशाळा ने बगीचो अभिराम छे.... सौ० ४

ज्यां गिरि चढतां जमणे, अंबा सन्मुख उगमणे;
मस्तके पगलां प्रभु नेमिकुमारना छे.... सौ० ५

ज्यां गिरि चढता भावे, भव्यात्मा कर्म खपावे;
अेवो मारग मुक्तिपुरी जाय छे.... सौ० ६

ज्यां चडाण आकरा आवे, दादानी याद सतावे;
जपतां हैये हाश मोटी थाय छे.... सौ० ७

ज्यां पहेली टूंके जांता, दहेराना दर्शन थातां;
प्रभुने जोवा हैयु घेलुं थाय छे.... सौ० ८

ज्यां अतित चोवीसी मांहे, सागरप्रभुना काळे;
इन्द्रे भरावेल मूरतना दर्शन थाय छे.... सौ० ९

ज्यां शतत्रण पगलां चडतां, गौमुखीअे पाद धरतां,
चोवीस प्रभुनां पगलां पावनकार छे.... सौ० १०

ज्यां अंबा-गोरख जातां, शांबप्रद्युम्नना पगलां देखातां;
नमन करतां सौ आगळ चाली जाय छे.... सौ० ११

ज्यां पांचमी टूंके पहोतां, मोक्षकल्याणक प्रभुनुं जोतां;
रोमे रोमे आनंद अपार छे.... सौ० १२

ज्यां सहसावने जातां, दीक्षा-नाण प्रभुना थातां;
पगले पगले कोयलना टहूकार छे.... सौ. १३

ज्यां जिनशासनना पाने, प्रथमचोमासुं तळेटी थावे;
छत्रछाया **हिमांशु सूरि** राय छे.... सौ. १४

ज्यां वीर छव्वीससो वरसे, **हेम** नव्वाणुं वार फरशें;
प्रेम-चंद्र-धर्मनी पसाय छे.... सौ. १५

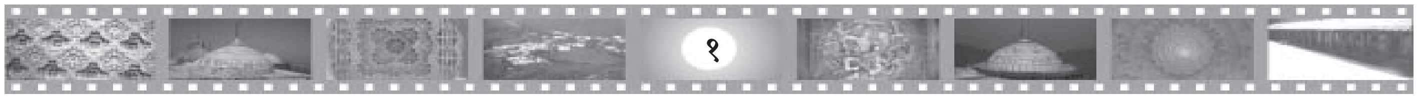

गिरनार महातीर्थ स्तुति

(राग : एवा प्रभु अरिहंतने.....)

१. बे तीर्थ जगमां छे वडा ते, शत्रुंजयने गीरनार,
एक गढ समोसर्या आदिजिनने, बीजे श्री नेमि जुहार;
ए तीर्थ भक्तिना प्रभावे, थाये सौनो बेडोपार,
ए **तीर्थराज**ने वंदता, पापो बधां दूरे जतां.....

२. देवांगनाने देवताओ, जेनी सेवना झंखता,
मळी तीर्थ कल्पो वळी, जेना गुणलां गावतां;
जिनो अनंता जे भूमिअे, परमपदने पामतां,
ए **गिरनार**ने वंदता, पापो बधां दूरे जतां. (२)

३. पशुओना पोकार सुणी, करूणा दिलमां आणतां,
रडती मेली राजीमति ने, विवाहमंडपे त्यागतां;
संयमवधू केवलश्री, शिवरमणीने परणतां,
ए **नेमिनाथ**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

४. शिवानंदने परणवाना, मनोरथोने सेवतां,
प्रितमतणा पगलेपगले गिरनारे संयम साधतां;
नेमथी वरसो पहेलां, मुक्तिपदने पामतां,
ए **राजीमति**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

५. कनक कामिनीने त्यागी, नेमजी पधारतां,
संयमग्रही संग्राम मांडी, घातीकर्म ज्यां चूरतां;
राजीमति दीक्षा ग्रही, शिवशर्मने ज्यां पामतां,
ए **सहसावन**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

६. अवसर्पिणीमां सौ प्रथम, अरिहंतपदे जे शोभतां,
तीर्थतणी रचना करी, युगलाधर्म निवारतां;
अज्ञानीना तिमिर टाळी, ज्ञानज्योत जलावतां,
ए **आदिनाथ**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

७. कमठतणा उपसर्गो ने, समभावथी जे झीलतां,
जे बिंबथी अमिरसतणा, झरणाओ सहेजे झरतां;
जेना प्रगटप्रभावथी, भविना दुःखडा भांगतां,
ए **अमिझरापार्श्व** ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

८. नेमसमीपे व्रतग्रही, गुफामां ध्यानने ध्यावतां,
अशुभकर्मना उदयथी जे, व्रतमां डगमग थावतां;
प्रतिबोध पामी राजुल वयणे मोक्षमारग साधतां
ए **रहनेमि**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

९. बालब्रह्मचारी नेमनाथ, परमपद ज्यां पामतां,
भविजनो मळीने भक्तिकाजे, पगलां ने त्यां ठावतां;
परतीर्थीओ जेने वळी, दत्तात्रय नामे पूजतां,
ए **पांचमीटूंक**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

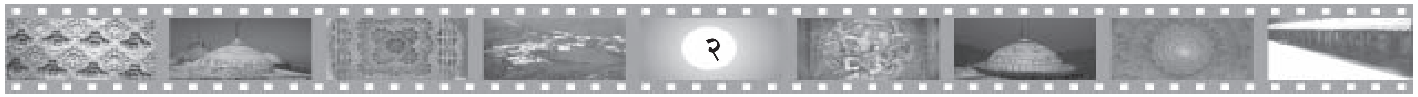

गिरनार वंदनावली

(राग : अरिहंत वंदनावली / मंदिर छो मुक्ति...)

१. बे तीर्थ जगमां छे वडा ते, शत्रुंजयने गिरनार,
एक गढ समोसर्या आदिजिनने, बीजे श्री नेमि जुहार;
ए तीर्थ भक्तिना प्रभावे, थाये सौनो बेडोपार,
ए **तीर्थराज**ने वंदता, पापो बधां दूरे जतां.....

२. गत चोवीसीमां जे भूमिअे, सिद्धिवधूजिनदस वर्या,
ने आवती चोवीसी मांहे, सौ जिनो शास्त्रे कह्यां;
ए गिरनारना गुणघणा पण, अंशथी शब्दे वण्या,
ए **गिरनार**ने वंदता, पापो बधां दूरे जतां.... (२)

३. नंदभद्र, गिरनार, स्वर्णगिरि, ने शाश्वतो रैवत मळी,
उज्जयंत, कैलास, एम करीने छ आरे नामो धरी;
उत्सर्पिणीअे शतधनुथी, छत्रीस योजन बनी,
ए **गिरनार**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां.... (२)

४. अप्सराओ ऋषिओ, वळी सिद्धपुरुषने गांधर्वो,
आ तीर्थकेरी सेवा काजे, आवतां सौ भविजनो;
घेरबेठां पण तस ध्यान धरतां, चोथे भवे शिवमुख लहो,
ए **गिरनार**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

५. त्रण त्रण कल्याणक भाविकाळे, नेमिजिनना ज्यां जाणी,
भरतेश्वरे रचना करावी, ''सुरसुंदर'' मंदिर तणी;
शोभती जेमां प्रभुनी, मणिमय मूरत घणी,
ए **गिरनार**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

६. अज्ञान टाळी भव्यजनना, ज्ञानज्योत जलावतां,
''स्वस्तिकावर्तक'' प्रासादने, भरतचक्री करावतां,
जेमां माणिक्य रत्नने वळी, स्वर्णबिंबो भरावतां,
ए **गिरनार**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

७. प्रासादनी प्रतिष्ठा काजे, गणधरो पधारतां,
हर्षे भरेलां इन्द्रो पण, ऐरावण पर आवतां;
हस्तिपादे भक्तिकाजे, गजपदकुंड करावतां,
ए **गिरनार**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

८. त्रण भुवननी सरितातणा, सुरभि प्रवाह ते झीलतां,
जे जल फरसतां आधि-व्याधि, रोग सौना क्षय थतां;
ते जल थकी जिन अर्चता, अजरामरपद पामतां,
ए **गिरनार**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

९. देवताओ उर्वशीओ, यक्षोने विद्याधरो,
वळी गांधर्वो स्वसिद्धि काजे, तीर्थनी स्तवना करे;
ज्यां सूर्य-चंद्र विमान विरामी, हर्षथी स्तवना करे,
ए **गिरनार**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

१०. ज्यां देवांगनाना गानमां, आसक्त मयूरो नाचतां,
पवने पूरेल वेणुने, झरणांओ सूरने पूरतां;
ज्यां वायुवेगे विविधवृक्षो, नृत्य करतां भासतां,
ए **गिरनार**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

११. गुफाओमां साधको वळी, मंत्रोने आराधतां,
नवरंध्रोथी प्राणोने रोधी, परमनुं ध्यान ध्यावतां;
वळी विविध योगासनो वडे जे, योग साधना साधतां,
ए **गिरनार**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

१२. स्वर्णमणि माणिक्यरत्नो, सृष्टिने अजवाळतां,
दिवसे मणीरत्नो वळी औषधो रात्रे दीपतां;
ने कदलीओना ध्वजपताका, अनंत वैभवे शोभतां,
ए **गिरनार**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

१३. आ तीर्थ भूमिअे पक्षीओनी, छाया पण आवी पडे,
भवभ्रमण केरां दुर्गतिना, बंधनो तेनां टळे;
महादुष्टने वळी कुष्टरोगी, सर्वसुख भाजन बने,
ए **गिरनार**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

१४. आ तीर्थपर जे भावथी, अल्प धर्म पण करे,
आ लोकथी परलोक वळी, ते परमलोकने जई वरे;
जे तीर्थनी सेवा थकी, फेरा भवोभवना टळे,
ए **गिरनार**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

१५. नेम आव्या जान जोडी, परणवा राजुल घरे,
पशुओतणा पोकार सुणी, ते नेमजी पाछा फरे;
वैराग्यना रंगे रमेने, शिववधू मनने हरे,
ए **गिरनार**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

१६. सहसावने वैभव त्यजी, दीक्षा ग्रहे राजुलप्रभु,
युद्ध आदरी चोपनदिने, कर्म करे ते लघु;
आसो अमासे चित्रा काळे, कैवल्य पामे जगविभु,
ए **गिरनार**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

१७. सुरवृंद नाचे हर्ष साथे, भावथी त्रणगढ रची,
वरदत्त-यक्षिणीवळी, दशार्हने तसश्री मळी;
तीर्थथापनाने करी, गौमेध यक्ष अंबा भळी,
ए **गिरनार**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

१८. सागर प्रभुना काळमां, अतीत चोवीसी मही,
ब्रह्मेन्द्रे निजभावि जाणी, नेमनी प्रतिमा भरी;
गणधर प्रभुना ए थया, वरदत्त शिववधू धणी,
ए **गिरनार**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

१९. आर्य-अनार्य पृथ्वी पर, प्रतिबोधतां विचरण करे,
निर्वाणकाळ समीप जाणी, रैवते प्रभु पाछा फरे;
अनशनग्रही अषाढ मासे, शुभाष्टमे सिद्धि वरे,
अे **गिरनार**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

२०. अल्पमति मनमां धरीने, भाव अपार हैये भरी,
संवंत सहस्त्र युगलने, संवरतणा वरसे वळी;
वर्षान्तमासे शुभ्रपडवे, शब्दो तणी गुंथणी करी,
ए **गिरनार**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

२१. गिरनार महिमा आज गायो, शत्रुंजय महातमथी लई,
प्रेम - चंद्र - धर्म पसाये, हेम सूरोने ग्रही;
हर्षित बन्या नरनारी सौ, अद्भूत गरीमाने सुणी,
ए **गिरनार**ने वंदता, पापो बधा दूरे जतां. (२)

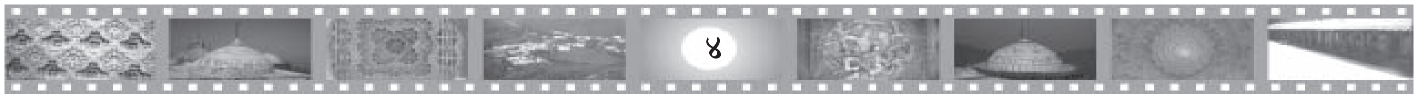

श्री गिरनार महातीर्थ के खमासमण के दुहें

रैवतगिरि समरूं सदा, सोरठ देश मोझार;
मानवभव पामी करी, ध्यावुं वारंवार.... (१)

सोरठदेशमां संचर्यो, न चढ्यो गढ **गिरनार**;
सहसावन फरश्यो नहीं, एनो एळे गयो अवतार.... (२)

दीक्षा - केवल सहसावने, पंचमे गढ निर्वाण;
पावनभूमिने फरशतां, जनम सफळ थयो जाण.... (३)

जगमां तीरथ दो वडा, शत्रुंजय गिरनार;
एक गढ ऋषभ समोसर्या, एक गढ नेमकुमार.... (४)

कैलास गिरिवरे शिववर्या, तीर्थंकरो अनंत;
आगे अनंता पामशे, तीरथकल्प वदंत.... (५)

गजपद कुंडे नाहीने, मुखबांधी मुखकोश;
देव नेमिजिन पूजतां, नाशे सघळा दोष.... (६)

एकेकुं पगलुं चढे, **स्वर्णगिरि**नुं जेह;
हेम वदे भवोभवतणां, पातिक थाये छेह.... (७)

उज्जयंत गिरिवर मंडणो, शिवादेवीनो नंद;
यदुकुळवंश उजाळीयो, नमो नमो नेमिजिणंद.... (८)

आधि व्याधि उपाधि सौ, जाये तत्काळ दूर;
भावथी **नंदभद्र** वंदता, पामे शिवसुख नूर.... (९)

(अवसर्पिणी के छः आरे में इस तीर्थ के अनुक्रम से छः नाम : (१) कैलास (२) उज्जयंत (३) रैवत (४) स्वर्णगिरि (५) गिरनार (६) नंदभद्र)

★ श्री रैवतगिरि महातीर्थ आराधनार्थं काउस्सग्ग करूं ? इच्छं रैवतगिरि महातीर्थ आराधनार्थं करेमि काउस्सग्गं वंदणवत्तियाए, पूअणवत्तियाए, सक्कारवत्तियाए,....... वोसिरामि.
(९ लोगस्स का काउस्सग्ग नहीं आए तो ३६ नवकार का काउस्सग्ग कर प्रगट लोगस्स बोलना)

गिरनार की महिमा न्यारी

१. गिरनार गिरिवर भी शत्रुंजयगिरि की तरह प्रायः शाश्वत है । पाँचवें आरे के अंत में जब शत्रुंजय की ऊँचाई घटकर सात हाथ होगी तब गिरनार की ऊँचाई सौ धनुष रहेगी।

२. रैवतगिरि (गिरनार) शत्रुंजयगिरि का पाँचवाँ शिखर होने के कारण वह पाँचवाँ ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान दिलानेवाला है ।

३. यह मनोहर गिरनार समवसरण की शोभा धारण करता है । क्योंकि वहाँ विस्तार से मध्य में चैत्यवृक्ष के जैसा मुख्यशिखर है और गढ़ जैसे छोटे छोटे पर्वत बसे हुए हैं । मानो चारों दिशा में झरनें बह रहे हों, ऐसे चार द्वार, चार पर्वत जैसे शोभते हैं ।

४. गिरनार पर अनंत तीर्थंकर आये हुए हैं और यहाँ पर महासिद्धि अर्थात् मोक्षपद पाया है । दूसरे अनंत तीर्थंकरो के दीक्षा केवलज्ञान और मोक्षकल्याणक यहाँ हो चुके हैं। वैसे ही अनेक मुनि भी मोक्षपद प्राप्त कर चुके है । और भविष्य में प्राप्त करेंगे ।

५. गत चौवीशी में हुए १) श्री नमीश्वर, २) श्री अनिल, ३) श्री यशोधर, ४) श्री कृतार्थ, ५) श्री जिनेश्वरः, ६) श्री शुद्धमति, ७) श्री शिवंकर और ८) श्री स्पंदन नामक आठ तीर्थंकरों के दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष कल्याणक और अन्य दो तीर्थंकर भगवंतों का मात्र मोक्ष कल्याणक गिरनार गिरिवर पर हुए थे ।

६. वर्तमान-चौवीशी के बाईसवें तीर्थंकर बालब्रह्मचारी श्री नेमिनाथ भगवान के दीक्षा-केवलज्ञान और मोक्षकल्याणक गिरनार पर हुए है । उसमें दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक सहसावन में तथा मोक्षकल्याणक पाँचवीं टुंक पर हुआ है ।

७. आगामी चौबीशी में होनेवाले १) श्री पद्मनाभ, २) श्री सुरदेव, ३) श्रीसुपार्श्व, ४) श्री स्वयंप्रभु, ५) श्री सर्वानुभूति, ६) श्री देवश्रुत, ७) श्री उदय, ८) श्री पेढाल, ९) श्री पोट्टील, १०) श्री सत्कीर्ति, ११) श्री सुव्रत, १२) श्री अमम, १३) श्री निष्कषाय, १४) श्री निष्पुलाक, १५) श्री निर्मम, १६) श्री चित्रगुप्त, १७) श्री समाधि, १८) श्री संवर, १९) श्री यशोधर, २०) श्री विजय, २१) श्री मल्लिजिन, २२) श्री देव इन बाईस तीर्थंकर परमात्मा का मात्र मोक्ष कल्याणक और २३) श्री अनंतवीर्य, २४) श्री भद्रकृत इन दो तीर्थंकर परमात्मा के दीक्षा-केवल ज्ञान और मोक्ष कल्याणक भविष्य में गिरनार महातीर्थ पर होंगे ।

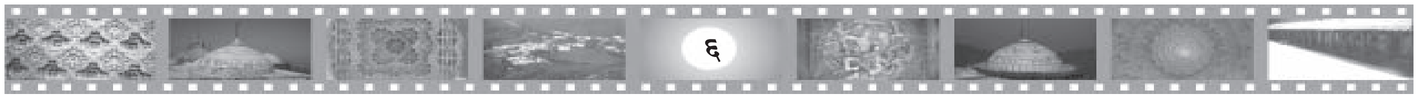

८. गिरनार महातीर्थ की भक्ति द्वारा श्री नेमिनाथ भगवान के रहनेमि सहित आठ भाई, शांब, प्रद्युम्न आदि अनेक कुमार, कृष्ण महाराजा की आठ पट्टरानियाँ, साध्वी राजीमतिश्रीजी आदि अनेक भव्यत्माओं ने मोक्षपद प्राप्त किया है । कृष्ण महाराजा ने तो तीर्थभक्ति के प्रभाव से तीर्थंकर नामकर्म बाँधा है । इसलिए उनकी आत्मा आनेवाली चौबीशी में बारहवें तीर्थंकर श्री अमम स्वामी बनकर मोक्षपद प्राप्त करेगी ।

९. गिरनार महातीर्थ तथा नेमिनाथ भगवान के प्रति अत्यंत राग के प्रभाव से, धामणउल्ली गाँव के धार नामक व्यापारी के, पाँच पुत्र १) कालमेघ, २) मेघनाद, ३) भेरव, ४) एकपद और ५) त्रैलोक्यपद ये पाँचों पुत्र मरकर तीर्थ में क्षेत्राधिपति देव बने ।

१०. स्वर्गलोक, पाताललोक और मृत्युलोक के चैत्यों में सुर, असुर और राजा गिरनार के आकार को हमेशा पूजते हैं ।

११. वल्लभीपुर के भंग होने से ईन्द्रमहाराजा ने स्थापित किए हुए श्री नेमिनाथ भगवान के बिंब की रत्नकांति गिरनार में लुप्त करने में आई थी । वह मूर्ति आज गिरनार में मूलनायक के स्थान पर बिराजमान है ।

१२. गिरनार महातीर्थ में विश्व की सब से प्राचीन मूलनायक रूप में बिराजमान श्री नेमिनाथ भगवान की मूर्ति लगभग १,६५,७३५ वर्ष न्यून (कम) ऐसे २० कोडाकोडी सागरोपम वर्ष प्राचीन है । जो गत चौबीशी के तीसरे सागर नामक तीर्थंकर के काल में ब्रह्मेन्द्र द्वारा बनाई गयी थी । इस प्रतिमाजी को प्रतिष्ठित किये लगभग ८४,७८५ वर्ष हुए हैं । मूर्ति इसी स्थान पर आगे लगभग १८,४६५ बर्ष तक पूजी जायेगी । उसके बाद शासन अधिष्ठायिका द्वारा पाताललोक में ले जाकर पूजी जायेगी।

१३. गिरनार पर इंद्र महाराजा ने वज्र से छिद्र करके सोने के बलानक झरोखेवाले चाँदी के चैत्य बनाकर, मध्यभाग में श्री नेमिनाथ परमात्मा की चालीस हाथ ऊँचाईवाली श्यामवर्ण रत्न की मूर्ति स्थापित की थी ।

१४. इंद्रमहाराजा ने पहले बनाया था, वैसा पूर्वाभिमुख जिनालय श्री नेमिनाथ भगवान के निर्वाण स्थान पर भी बनाया था ।

१५. गिरनार में एक समय में कल्याण के कारण स्वरूप छत्रशिला, अक्षरशिला, घंटाशिला, अंजनशिला, ज्ञानशिला, बिन्दुशिला और सिद्धशिला आदि शिलाएँ शोभित थीं ।

१६. जिस प्रकार मलयगिरी पर दूसरे वृक्ष भी चंदनमय बनते हैं, उस प्रकार गिरनार पर आनेवाले पापी प्राणी भी पुण्यवान बन जाते हैं ।

१७. जिस प्रकार पारसमणि के स्पर्श से लोहा सोना बनता है उस प्रकार गिरनार के स्पर्श से प्राणी चिन्मय स्वरूपी बन जाते हैं ।

१८. गिरनार की भक्ति करनेवालों को इस भव में और परभव में दरिद्रता नहीं आती ।

१९. गिरनार महातीर्थ में निवास करनेवाले तिर्यंचों (जानवर) को भी आठ भव के अंदर सिद्धिपद प्राप्त होता है ।

२०. गिरनार महातीर्थ पुण्य का ढेर है ।

२१. गिरनार महातीर्थ पृथ्वी के तिलक समान है ।

२२. अनेक विद्याधर देवता, किन्नर, अप्सरा और यक्ष इष्टसिद्धि को प्राप्त करने की इच्छा से गिरनार में निवास करते हैं ।

२३. गिरनार गिरिवर के पवन का पवित्र आहार करनेवाले और विषममार्ग से चलने वाले योगी अर्हं पद की उपासना करते हुए गुफाओं में साधना करते हैं ।

२४. गिरनार महातीर्थ की सेवा से कई पुण्यात्मा इस लोक में सर्व संपत्ति और परलोक में परमपद को प्राप्त करते हैं ।

२५. गिरनार महातीर्थ की सेवा से पापी जीव सर्वकर्मों का संक्षेप करके अव्यक्त और अक्षय ऐसे शिवपद को प्राप्त करते हैं ।

२६. सर्वतीर्थों में उत्तम और सर्वतीर्थ की यात्रा का फल देने वाले इस गिरनार महातीर्थ के दर्शन और स्पर्श मात्र से सर्व पापों का नाश हो जाता है ।

२७. गिरनार महातीर्थ की भक्ति द्वारा महापापी और महादुष्ट ऐसे कुष्ठादिक रोगवाले जीव भी सर्वसुख प्राप्त करते हैं ।

२८. गिरनार महातीर्थ के शिखर पर बसे हुए कल्पवृक्ष भी याचकों की मनोकामना पुरी करते हैं । यह इस गिरि की ही महिमा है। यहाँ बसे हुए नदियाँ, पर्वत, वृक्ष, कुंड और भूमि दूसरे स्थान में बसे हुए एक तीर्थ की तरह यहाँ तीर्थत्व को प्राप्त करते हैं। अर्थात् सब तीर्थमय बन जाते हैं ।

२९. गिरनार महातीर्थ में पुण्यहीन प्राणीयों को नहीं दिखनेवाली, सुवर्णसिद्धि करनेवाली और सर्व इच्छितफल को देनेवाली रसकूपिकाएँ हैं ।

३०. गिरनार महातीर्थ की मिट्टी को गुरुगम के योग से तेल और घी के साथ मिलाकर अग्नि में गरम करने से सुवर्णमय बन जाती है।

३१. भद्रशाल आदि वन में सर्व ऋतुओं में सर्व जाति के फूल खिलते हैं । जल और फल सहित भद्रशाल आदि वन से घिरा हुआ यह रमणीय गिरनार पर्वत इंद्रो का क्रीडापर्वत है ।

३२. गिरनार महातीर्थ में हर एक शिखर के ऊपर जल, स्थल और आकाश में घूमनेवाले जो जीव होते हैं, वे सब तीन भव में मोक्ष प्राप्त करते हैं ।

३३. गिरनार महातीर्थ पर वृक्ष, पाषाण, पृथ्वीकाय, अपकाय, वायुकाय और अग्निकाय के जीव हैं वे व्यक्त चेतनावाले नहीं होते हुए भी इस तीर्थ के प्रभाव से कुछ काल में मोक्ष प्राप्त करनेवाले होते हैं ।

३४. जो जीव-गिरनार महातीर्थ पर आकर अपना न्यायोपार्जित धन सुपात्र दान द्वारा सद्व्यय करते हैं, उनको अनेक भवों तक सर्व संपत्ति प्राप्त होती है ।

३५. उत्तम ऐसे भव्य जीव गिरनार महातीर्थ में मात्र एक दिन भी शील धारण करते हैं, उनकी हमेशा सुर-असुर, नर और नारियाँ सेवा करते हैं ।

३६. गिरनार महातीर्थ में जो उपवास, छठ्ठ, अठ्ठम आदि तप करते हैं, वे सर्व सुखो का उपभोग करके मोक्षपद अवश्य प्राप्त करते हैं ।

३७. जो जीव गिरनार तीर्थ पर आकर भाव से जिनप्रतिमाजी की पूजा-अर्चना करते हैं, वे शीघ्र ही मोक्षपद प्राप्त करते हैं, घर में बैठकर भी, शुद्ध भाव से अगर गिरनारजी का ध्यान करें, तो भी चौथे भव में मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं ।

३८. गिरनार महातीर्थं की पवित्र नदियाँ, झरने, शिखर, धातुएँ और पेड-पौधे भी सर्वजीवों को सुख-शांति प्रदान करते हैं ।

३९. गिरनार पर्वत पर श्री नेमिनाथ भगवान की प्रतिष्ठा के अवसर पर, प्रभुजी के स्नात्राभिषेक के लिए तीनों लोक की नदियाँ, विशाल गजपदकुंड में आकर समाई थी ।

४०. गिरनार महातीर्थ में 'मोक्षलक्ष्मी' के मुख रूप रहे हुए 'गजेन्द्रपद' (गजपद) नामक विशाल कुंड के पवित्र जल के स्पर्श से ही अनेक जन्मों के पापो का नाश होता है ।

४१. गिरनार गिरिवर के गजेन्द्र पद कुंड में स्नान करके जिन्होंने जिनेश्वर की प्रतिमा को प्रक्षाल कराया है, उन्होंने कर्ममल का नाश करके अपनी आत्मा को पवित्र किया है ।

४२. गिरनार महातीर्थ के गजपदकुंड का 'जलपान' करने से काम, श्वास, अरूचि, ग्लानि, प्रसुति और उदर के बाहरी रोग भी, अंतर के कर्ममल की पीडा की तरह नाश होते हैं ।

४३. जगत में कोई भी ऐसी औषधियाँ, सुवर्णादि सिद्धियाँ और रसकूपिकाएँ नहीं, जो इस गिरनार तीर्थ पर न मिले ।

४४. आकाश में उड़ते पक्षियों की छाया भी अगर इस गिरनार पर्वत को छूती है तो उनकी भी दुर्गति का नाश होता है ।

४५. सहसावन में नेमिनाथ भगवान के दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक हुए थे ।

४६. सहसावन में (लक्षारामवन) करोडों देवताओ ने श्री नेमिनाथ भगवानजी के प्रथम और अंतिम समवसरण की रचना की थी। प्रभुजी ने यहाँ पर प्रथम और अंतिम देशना (प्रवचन) दी थी ।

४७. सहसावन में सोने के चैत्यों में मनोहर चौबीसी का निर्माण किया गया था ।

४८. सहसावन में कृष्णवासुदेव द्वारा रजत, सुवर्ण और रत्नजडित प्रतिमा युक्त तीन जिनालयों का निर्माण हुआ था ।

४९. सहसावन की एक गुफा में भूत-भविष्य और वर्तमान ऐसे तीन चौबीशी के बहत्तर प्रतिमाजी बिराजमान हैं ।

५०. सहसावन में (लक्षारामवन) श्री रहनेमिजी और साध्वीजी राजीमतिश्रीजी आदि मोक्षपद प्राप्त कर चुके हैं ।

५१. सहसावन में अभी भी प्राचीनकालीन श्री नेमिनाथ परमात्मा की प्रतिमायुक्त अद्भुत समवसरण मंदिर है ।

५२. गिरनार महातीर्थ की पहली टुंक पर अभी भी चौदह-चौदह बेमिसाल जिनालय पर्वत के ऊपर तिलक समान शोभित हो रहे हैं ।

५३. भारतभर में मूलनायक के रूप में तीर्थंकर नहीं होते हुए भी सामान्य केवली सिद्धात्मा श्री रहनेमिजी का एकमात्र जिनालय गिरनार महातीर्थ में है ।

५४. श्री हेमचंद्राचार्य, श्री बप्पभट्टसूरि, श्री वस्तुपाल-तेजपाल, श्री पेथडशा आदि अनेक पुण्यात्माओं को सहायता करने वाली, गिरनार महातीर्थ की अधिष्ठायिका श्री अंबिका देवीजी आज भी यहाँ मौजुद है ।

५५. जब तक गिरनार महातीर्थ की यात्रा नहीं की हो, तब तक ही जीवों के सर्व दुःख, सर्व पाप और संसार का घोर भ्रमण रहता है ।

वर्तमान श्री नेमिनाथ परमात्मा की प्रतिमा का इतिहास

इस जंबूद्विप के भरतक्षेत्र की गत चौबीसी के सागर नामक तीसरे तीर्थंकर को कैवल्यज्ञान प्राप्त हुआ था । उत्तमज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् विविध प्रदेशो में विचरण करते हुए वे अपने चरणकमल की रज द्वारा भरतखंड की धन्य धरा को पावन कर रहे थे । एक बार उज्जैनी नगरी के बाहर उद्यान में करोडो देवों द्वारा रचित समवसरण में परमात्मा की सुमधुर देशना का अमृतपान कर रहे नरवाहन राजा ने परमात्मा से प्रश्न किया कि ''हे प्रभु ! मेरा मोक्ष कब होगा ? परमात्मा ने कहा कि अगली चौबीसी के बाईसवें तीर्थंकर बालब्रह्मचारी श्री नेमिनाथ भगवान के शासन में तेरा मोक्ष होगा । अपने भाविवृत्तांत को जानकर वैराग्यवासित बने नरवाहन राजा भगवान के पास दीक्षा लेकर संयमधर्म की उत्कृष्ट आराधना करने लगे । कालक्रम से आयुष्य पूर्ण होते ही वह जीव पांचवें देवलोक का दस सागरोपम के आयुष्यवाला इन्द्र बना ।

अष्टमहाप्रातिहार्ययुक्त विश्वविभु विचरण करते-करते चंपापुरी के महाउद्यान में समवसरे । उस समय वैराग्यसभर वाणी द्वारा बारह पर्षदा को प्रतिबोध करते हुए परमेश्वर चौदराज लोक में रहे हुए सिद्धजीव और सिद्धशिला के स्वरुप को सुरम्य वाणी द्वारा प्रकाशित कर रहे थे, कि-

''४५ लाख योजन के विस्तारवाली, उलटे छत्र के आकारवाली, श्वेतवर्ण की सिद्धशिला है । वह चौदराजलोक के अग्रभाग पर बारह देवलोक, नवग्रैवेयक, सर्वार्थसिद्ध नामक अनुत्तरविमान से १२ योजन ऊपर स्थित है । सिद्धशिला मध्य भाग में आठ योजन मोटी है और दोनों तरफ पतली होते होते मक्खी के पंख जितनी अतिशय पतली होती है । मोती, शंख; स्फटिकरत्न समान अतिनिर्मल, उज्ज्वल सिद्धशिला और अलोक के बीच एक योजन का अंतर होता है । इस अंतर में ऊपर की सपाटी पर उत्कृष्ट से ३३३ धनुष्य और ३२ अंगुल के उत्कृष्ट देहप्रमाण वाले सिद्ध के जीव आठ कर्मों से मुक्त होकर अलोक की सपाटी को स्पर्श करके रहे हुए है, उस भाग को मोक्ष कहते हैं । मोक्ष के मुक्ति, सिद्धि, परमपद, भवनिस्तार, अपुनर्भव, शिव, निःश्रेयस, निर्वाण, अमृत, महोदय, ब्रह्म, महानंद आदि अनेक नाम हैं । उस मुक्तिपुरी में अनंत सिद्ध जीव अनंत सुख में वास करते हैं । वे अविकृत, अव्ययरूप, अनंत, अचल, शांत, शिव, असंख्य, अक्षय, अरूप और अव्यक्त हैं । उनका स्वरूप मात्र जिनेश्वर परमात्मा अथवा केवली भगवंत ही जानते हैं । सर्वार्थसिद्ध विमान में निर्मल अवधिज्ञानवाले महेन्द्रों को एक करवट बदलने में १६॥ सागरोपम और दूसरी करवट बदलने में १६॥ सागरोपम का काल पसार होता है । इस तरह ३३ सागरोपम के आयुष्य को अगाध सुख

में सोते सोते ही पूर्ण करते हैं । इससे भी अनंतगुणा सुख मोक्ष में है। योग से पवित्र ऐसे पुरुष कर्म का नाश होने से स्वयं ही जान सकते है, किंतु वचन द्वारा वर्णन न हो सके ऐसा मुक्तिसुख सिद्ध के जीव प्राप्त करते हैं ।

इस देशना के समय पांचवें देवलोक में इन्द्र बना हुआ नरवाहन राजा का जीव वीतराग की वाणी का सुधापान करके, स्वर्ग के सुखों की निःस्पृहा करके, सर्वज्ञ भगवंत को नमन करके पूछता है, ''हे स्वामी ! मेरे इस भवसागर का परिभ्रमण कभी रूकेगा या नहीं ? आपके द्वारा वर्णन किए हुए मुक्तिरूप मेवा का आस्वाद करने का अवसर मुझे मिलेगा या नहीं ? उसकी शंका का निवारण करते हुए धर्मसार्थवाह प्रभु कहते हैं, ''हे ब्रह्मदेव ! आप आनेवाली अवसर्पिणी में श्री अरिष्टनेमि नामक बाईसवें तीर्थंकर होनेवाले हैं, उनके वरदत्त नामक प्रथम गणधरपद को प्राप्त करके, भव्यजीवों को बोध कराके, सर्वकर्मों का क्षय करके, रैवतगिरि के आभूषण बनके परमपद को प्राप्त करेंगे । यह निःसंशय बात है ।'' प्रभु के इन अमृतवचनों को सुनकर आनंदविभोर हुए ब्रह्मेन्द्र सागर प्रभु को अत्यंत आदरपूर्वक अभिवंदन करके अपने देवलोक में जाता है ।

''अहो ! मेरे अज्ञानरूपी अंधकार का छेदन करनेवाले, मेरे भवसंसार के तारणहार श्री नेमिनिरंजन की उत्कृष्ट रत्नों की मूर्ति बनाकर उनकी भक्ति द्वारा मेरे कर्मों का क्षय करूँ ।'' इस भाव के साथ बारह-बारह योजन तक जिनकी कांति फैले ऐसे अंजन स्वरूपी प्रभु की वज्रमय प्रतिमा बनाकर दस सागरोपम तक निशदिन शाश्वत प्रतिमा की तरह संगीत-नृत्य-नाटकादि द्वारा त्रिकाल उपासना करते हैं । इस तरह श्री नेमिनाथ प्रभु की भक्ति में उत्तरोत्तर उत्तमभाव लाकर स्व आयुष्य की अल्पता को जानकर उस प्रतिमा के साथ सुवर्णमय, रत्नमय ऐसी अन्य प्रतिमाओं को भी रैवताचल पर्वत की गुफा में कंचनबलानक नामक चैत्य का निर्माण करके स्थापना की । स्व आयुष्य पूर्ण करके, वहाँ से च्यवन करके अनेक बड़े-बड़े भवों को प्राप्त करके वह नेमिनाथ प्रभु के समय में पुण्यसार नामक राजा बना ।''

यह पुण्यसार राजा पूर्वभवों में स्वयं भरायी हुई देवाधिदेव की मूर्ति की दस-दस सागरोपम काल तक की हुई भक्ति के प्रभाव से गणधरपद प्राप्त करके नेमिनाथ भगवान के वरदत्त नामक प्रथम गणधर बनेंगे और शिवरमणी के संग में शाश्वत सुख का उपभोग करेंगे ।'' समवसरण में देशना दरम्यान श्री नेमिनाथ प्रभु के इन मधुरवचनों को सुनकर उस समय के ब्रह्मेन्द्र उठकर परमात्मा को नमस्कार करके कहते हैं कि ''हे भगवंत ! आपकी उस प्रतिमां को मैं आज भी पूजता हूँ, और मेरे पूर्वज इन्द्रों ने भी भक्ति से उसकी उपासना की है । पाँचवें देवलोक में उत्पन्न होनेवाले सभी ब्रह्मेन्द्र आपकी उस प्रतिमा की पूजा भक्ति करते थे । आज आपके बताने पर ही इस प्रतिमा की अशाश्वतता का पता चला है । हम तो इसे शाश्वत ही मानते थे।

उस समय प्रभु कहते हैं कि ''हे इन्द्र ! तिर्च्छालोक की तरह देवलोक मे अशाश्वती प्रतिमा नही होती इसलिए आप उस प्रतिमा को यहाँ लाओ ।'' प्रभु की आज्ञा से इन्द्र शीघ्र उस मूर्ति को ले आए । कृष्ण महाराजा ने हर्ष से पूजा करने के लिए वह मूर्ति प्रभु से ली । सुर-असुर और नरेन्द्र श्री नेमिनाथ प्रभु को वन्दन करके उनके मुख से रैवताचलगिरि का माहात्म्य सुनने लगे ।

प्रभु कहते हैं कि - यह रैवताचलगिरि पुंडरिक गिरिराज का सुवर्णमय पाँचवाँ मुख्य शिखर है, जो मन्दार और कल्पवृक्ष आदि उत्तम वृक्षों से लिपटा हुआ है । यह महातीर्थ हमेशा झरते हुए झरनों से भव्य जीवों के पापों का प्रक्षालन करता है । इसके स्पर्श मात्र से हिंसा के पाप दूर हो जाते हैं ।

* सभी तीर्थ की यात्रा के फल को देनेवाले इस गिरनार के दर्शन और स्पर्शन मात्र से सर्व पाप नाश होते हैं ।

* इस गिरनार तीर्थ पर आकर जो न्यायोपार्जित धन का सद्व्यय करते हैं, उन्हें जन्मोंजनम संपत्ति की प्राप्ती होती है।

* जो यहाँ आकर भाव से जिनप्रतिमा की पूजा करते हैं, वे मोक्ष सुख को प्राप्त करते हैं, तो मानवसुख की तो बात ही क्या करनी ?

* जो यहाँ सुसाधु को शुद्ध अन्न, वस्त्र और पात्र वहोराते है, वे मुक्ति रूपी स्त्री के हृदय को आनंदित करते हैं ।

* इस रैवतगिरि पर स्थित वृक्ष और पक्षी भी धन्य और पुण्यशाली हैं, तो मनुष्यों की तो बात ही क्या करनी ?

* देवता, ऋषि, सिद्धपुरुष, गंधर्व और किन्नरादि हमेशा इस तीर्थ की सेवा करने आते हैं ।

* गिरनार पर रहे हुए गजपद कुंड आदि अन्य कुंडों का अलग-अलग प्रभाव है, जिसमें मात्र ६ महीने स्नान करने से प्राणियों के कुष्ठादि रोग नाश होते हैं ।

इस प्रकार बालब्रह्मचारी श्री नेमिनिरंजन के मुखकमल से गिरनार तीर्थ की महिमा सुनकर पुण्यशाली सुर-असुर और नरेश्वर आनंदित होते हैं । उस अवसर पर श्री कृष्ण वासुदेव प्रश्न करते हैं, ''हे परम करुणासागर ! यह प्रतिमा जो मेरे प्रासाद में स्थापित करवानी है, वह वहाँ कितने समय तक रहेगी ? इसके बाद इसकी कहाँ-कहाँ पूजा होगी ?''

प्रभु कहते हैं, ''जब तक द्वारिकापुरी रहेगी तब तक यह प्रतिमा तुम्हारे प्रासाद में पूजीं जाएगी । उसके बाद कांचनगिरि पर देवताओं के द्वारा इसकी पूजा होगी । मेरे निर्वाण के २००० वर्ष के बाद अंबिका देवी की आज्ञा से उत्तम भावनावाला रत्नसार नामक वणिक एक गुफा में से प्रतिमा को रैवतगिरि के प्रासाद में बिराजमान कर, पूजा करेगा । बाद में १,०३,२५० वर्ष तक यह प्रतिमा वहाँ रहकर फिर वहाँ से अदृश्य होगी । उस समय दुषम-दुषम काल का छठ्ठा आरा प्रारंभ होते ही अधिष्ठायिका अंबिकादेवी उस जिनबिंब को पाताललोक में पूजेगी । अन्य देवता भी उसकी पूजा करेंगे ।

वर्तमान काल में बिराजमान गिरनार मंडन श्री नेमिनाथ भगवान के अद्भुत इतिहास को जानकर सार यह निकलता है कि यह प्रतिमा अतीत चौवीशी के तीसरे सागर तीर्थंकर परमात्मा के काल में पाँचवें ब्रह्मलोक देवलोक के ब्रह्मेन्द्र द्वारा भरवायी गयी है । इस कारण से भरतक्षेत्र में वर्तमान मे सबसे प्राचीनतम प्रतिमा मानी जाती है ।

श्री नेमिनाथ प्रभु की प्रतिमा की प्राचीनता का काल : अतीत उत्सर्पिणी के प्रथम आरे के २१००० वर्ष + दूसरे आरे के २१००० वर्ष + तीसरे आरे के ८४२५० वर्ष के बाद सागर तीर्थंकर हुए इसलिए २१०००+२१०००+८४२५० = १२६२५० वर्ष व्यतीत होने के कुछ वर्षों के बाद ब्रह्मेन्द्र द्वारा प्रतिमा भरवायी हुई होगी । इस कारण से अतीत उत्सर्पिणी के १० कोडाकोडीसागरोपम में १२६२५० से कुछ अधिक वर्ष न्यून काल अतीत उत्सर्पिणी का हुआ ।

१२६२५० वर्ष न्यून १० कोडाकोडी सागरोपम में वर्तमान अवसर्पिणी काल के १० कोडाकोड़ी सागरोपम काल में से छट्ठे आरे के २१००० वर्ष तथा पाँचवें आरे के शेष १८४८४ वर्ष कम करने पर ३९४८५ वर्ष न्यून इस अवसर्पिणी काल की प्राचीनता का होता है । इसीलिए -

१२६२५० वर्ष न्यून १० कोडाकोडी सागरोपम

\+ ३९४८५ वर्ष न्यून १० कोडाकोडी सागरोपम

१६५७३५ वर्ष न्यून २० कोडाकोडी सागरोपम

वर्तमान श्री नेमिनाथ परमात्मा की प्रतिमा १६५७३५ वर्ष न्यून २० कोडाकोडी सागरोपम वर्ष प्राचीन है ।

इस प्रतिमा का वर्तमान स्थान पर प्रतिष्ठित होने का काल :

श्री नेमिनाथ प्रभु के निर्वाण के २००० वर्ष के बाद प्रतिष्ठित होने से उनके शासन के शेष ८२००० वर्ष + श्री पार्श्वनाथ प्रभु के शासन २५० वर्ष + श्री महावीर स्वामी के शासन के २५३५ वर्ष से यह प्रतिमा प्रतिष्ठित है ।

८२००० + २५० + २५३५ वर्ष = ८४७८५ वर्ष से यह प्रतिमा इस स्थान पर बिराजमान है ।

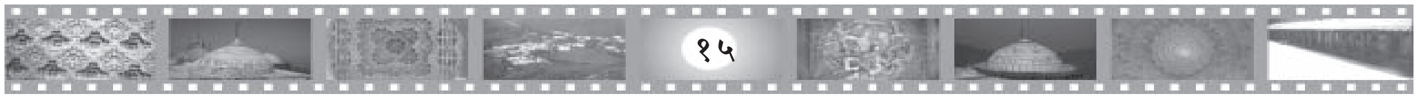

वर्तमान श्री नेमिनाथ परमात्मा की प्रतिमा का पुनः प्रकटीकरण और रत्नसार श्रावक

वर्तमान अवसर्पिणी के भरतक्षेत्र की भव्य भूमी पर बाइसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ परमात्मा के निर्वाण के २००० वर्ष व्यतीत हो चुके थे । उसी काल में सोरठ देश की धन्यधरा पर कांपिल्य नामक नगर में रत्नसार नामक धनिक श्रावक रहता था। अचानक १२ वर्ष तक दुष्काल का समय आया। पशु तो क्या मानव भी पानी के अभाव से मरने लगे। उस समय आजीविका की तकलीफ होने से धनोपार्जन करने के लिए रत्नश्रावक देशान्तर में घूमते घूमते काश्मीर देश के नगर में जाकर रहने लगा। रत्नश्रावक के स्थान बदलने के साथ ही उसके नसीब ने भी स्थान बदलने का निश्चय कर लिया था । वह अपने प्रचंड पुण्योदय से दिन-प्रतिदिन अपार धन कमाने लगा । पूर्वभवों में बांधे हुए कोई पुण्यानुबंधी पुण्य के उदय से प्राप्त लक्ष्मी को, कदम-कदम पर सन्मार्ग में व्यय करने की भावना रत्नश्रावक के मन में उत्पन्न होने लगी । संपत्ति का संग्रह न करते हुए, संपत्ति का सदुपयोग कर सद्गति की तरफ प्रयाण हेतु अरिहंत परमात्मा की विशिष्ट पूजा-भक्ति करने के लिए श्री आनंदसूरीश्वरजी महाराज साहेब की पुनित निश्रा में सिद्धाचल, गिरनार आदि महातीर्थों की स्पर्शना करने के लिए पैदल संघ यात्रा का प्रयाण किया ।

ग्रामानुग्राम देव-गुरु और साधर्मिक भक्ति तथा नये-नये जिनालयों का निर्माण करवाते हुए श्री आनंदसूरि गुरु की अपार भक्ति करते हुए संघ आगे बढ रहा था । पूर्वकृत अशुभ कर्मोदय से संघमार्ग में अंतरायभूत बननेवाले, व्यंतर, वैताल, राक्षस और यक्षों के द्वारा होनेवाले उपसर्गो और विघ्नों का नाश करने के लिए श्री नेमिनिरंजन के शासन की अधिष्ठायिका अंबिकादेवी का ध्यान कर, रत्नश्रावक ने संघयात्रा को आगे बढाया । स्ववतन कांपिल्यनगर में स्वामिवात्सल्य सहित भक्ति से वहाँ के संघ को निमंत्रित कर, श्री आनंदसूरिगुरु की निश्रा में श्री संघ आनंदसभर तीर्थाधिराज श्री सिद्धगिरि के शीतल सान्निध्य में आया। आनंदोल्लास पूर्वक शाश्वत तीर्थ की भक्ति करके श्री संघ रैवतगिरि महातीर्थ के रमणीय वातावरण में भूतकाल में हुए अनंत तीर्थंकरों की सिद्धभूमि की सुवास लेने लगा । वर्तमान चौबीशी के बाइसवें तीर्थंकर बालब्रह्मचारी श्री नेमिनाथ प्रभु की केवलज्ञान भूमि पर श्री नेमिजिन की पावन प्रतिमा की पूजा करके रत्नश्रावक के साथ संघ मुख्य शिखर की तरफ आगे बढ रहा था । उस समय रास्ते में जाते हुए सभी ने छत्रशिला को नीचे से कंपायमान होते हुए देखा । रत्नश्रावक ने तुरंत ही अवधिज्ञानी गुरु आनंदसूरि को इस छत्रशिला के कंपन का कारण पूछा तो, अवधिज्ञान के सामर्थ्य से पूज्य गुरुभगवंत आदरपूर्वक कहते हैं कि

''हे रत्नसार ! तेरे द्वारा इस रैवतगिरि तीर्थ का नाश होगा और तेरे ही द्वारा इस तीर्थ का उद्धार भी होगा'' ।

जिनेश्वर परमात्मा का शासन जिसके रोम-रोम में बसा था, ऐसा रत्नश्रावक इस महातीर्थ के नाश में निमित्त बनने के लिए कैसे तैयार हो ? हृदय के उछलते भावों के साथ नेमिप्रभु को वंदन के लिए आया हुआ रत्नश्रावक अत्यन्त खेद के साथ दूर रहकर ही वंदन कर वापस जा रहा था । गुरु आनंदसूरी कहते है, ''रतन ! इस तीर्थ का नाश तेरे द्वारा होगा, इसका अर्थ तेरा अनुसरण करनेवाले श्रावकों के द्वारा होगा । तेरे द्वारा तो इस महान तीर्थ का अधिक उद्धार होगा । इसलिए खेद मत कर !'' गुरुभगवंत के उत्साहपूर्ण वचन सुनकर रत्नश्रावक संघ के साथ रैवतगिरि के मुख्य शिखर पर प्रवेश करता है । हर्ष से भरे यात्रीगण गजेन्द्रपद कुंड (हाथी पगला) से शुद्ध जल निकालकर स्नान करने लगे । रत्नश्रावक ने भी इस दिव्य जल से स्नान करके उत्तम वस्त्रों को धारण कर, गजपदकुंड के जल को कुंभ में ग्रहण कर, जैन धर्म में दृढ ऐसे विमलराजा के द्वारा रैवतगिरि पर स्थापित लेपमयी श्री नेमिनाथ प्रभु के काष्ठमय प्रासाद में प्रवेश किया ।

सभी यात्रीगण हर्षविभोर बनकर गजपदकुंड के शुद्ध जल से कुंभ भर-भर कर प्रक्षालन कर रहे थे । इस अवसर पर अनेक बार देवताओं और पूजारी के द्वारा निषेध करने पर भी उनकी बात की अवगणना कर, हर्ष के आवेश में ज्यादा पानी के द्वारा प्रक्षालन करने से जल की एकधारा के प्रवाह के प्रहार से लेप्यमयी प्रतिमा का लेप गलने लगा और थोडी ही देर में वह प्रतिमा गिली मिट्टी के पिंड स्वरूप बन रही थी । इस दृश्य को देखकर रत्नश्रावक अत्यन्त आघात के साथ शोकातुर बना और मूर्च्छित हुआ । इससे सकलसंघ शोक के सागर में डूब गया । चारों तरफ हाहाकार मच गया । संघपति रत्नश्रावक पर शीतल जल के उपचार किये गये । थोडी ही देर में संघपति रत्नश्रावक स्वस्थ बन गया । प्रभुजी की प्रतिमा गलने से टूटे हुए हृदयवाला रत्नश्रावक आकुल-व्याकुल होकर विलाप करने लगा कि ''इस महातीर्थ का नाश करनेवाला मैं महापापी ! मुझे धिक्कार हो ! अज्ञानी ऐसा मेरा अनुकरण करनेवाले यात्रिकों को भी धिक्कार हो ! अरे ! यह क्या हो गया ? मैं उछलते हृदय के भावों के साथ इस महातीर्थ के दर्शन करने आया और तीर्थ उद्धार के बदले तीर्थनाश में निमित्त बन गया। अब मैं कौन से दान-शील-तप-भाव धर्म के कार्य करुँ ? जिसके प्रभाव से मेरा यह पापकर्म नाश हो जाए ! नहीं ! नहीं ! अब तो अनेक सुकृत करने पर भी मेरा यह दुष्कृत्य नाश नहीं होगा । ऐसा लगता है ! अब व्यर्थ चिंता करने से क्या फायदा ? अब तो नेमिनाथ परमात्मा ही मुझे शरणभूत हैं !'' ऐसे दृढ़ संकल्प के साथ रत्नश्रावक चार आहार का त्याग कर वहीं प्रभु के चरणों में आसन लगाकर बैठ गया ।

समय बीतता गया । रत्नश्रावक के सत्त्व की परीक्षा प्रारंभ होने लगी । अनेक विघ्न आने पर भी रतन अपने संकल्प में मजबूत रहा । रतन के सत्व और निश्चलता के प्रभाव से प्रसन्न हुई शासन की अधिष्ठायिका अंबिका देवी एक महिने के अन्त में प्रगट हुई । उनके दर्शन होते ही तपधर्म का प्रभाव जानकर हर्षातुर बना रतन अंबिकादेवी को नमस्कार करता है । अंबिकादेवी कहती है, ''हे वत्स ! तू धन्य है, तू खेद क्यों करता है ? स्वयं तीर्थयात्रा करने के साथ अनेक भव्य जीवों को संघ के साथ इस महातीर्थ की यात्रा करवाकर तुमने अपने मनुष्य जन्म को सफल किया है । इस प्रतिमा का पुराना लेप नाश होने पर नया लेप होता ही रहता है । जिस तरह जीर्णवस्त्र निकालकर नये वस्त्र ग्रहण किए जाते हैं, उसी तरह तुम भी इस प्रतिमा का नया लेप करवाकर पुनः प्रतिष्ठा करवाओ !'' अंबिकादेवी के वचन सुनकर विषादग्रस्त बना रतन कहता है, माँ ! आप ऐसे वचन न उच्चारो ! पूर्वबिंब का नाश करके मैं भारी कर्मी बना हूँ, और आपकी आज्ञा से मूर्ति का लेप करवाकर पुनः स्थापना करूँ तो भविष्य में पुनः मेरी तरह अन्य कोई अज्ञानी इस बिंब का नाश करनेवाला बनेगा । इसलिए ओ मैया ! आप यदि मेरे तप से प्रसन्न हों, तो मुझे ऐसी कोई अभंग मूर्ति दीजिए जिससे भविष्य में किसी के द्वारा इसका नाश न हो सके और भक्तजन भाव से जलाभिषेक करके अपनी इच्छाओं को पूर्ण कर सके ।'

अंबिकादेवी रत्नश्रावक के इन वचनों को सुना अनसुना कर अदृश्य हो गयी । अंबिका देवी को अदृश्य होते देखकर रत्नश्रावक पल-दो-पल अस्वस्थ बन गया । परन्तु अनुपम सत्त्व का स्वामी रतन स्वस्थ बनकर पुनः अंबिकादेवी के ध्यान में बैठ गया । रतन के महासत्व की कसौटी करने के लिए देवी ने अनेक उपसर्गों के द्वारा उसे ध्यान से चलायमान करने की बहुत कोशिश की, परन्तु वह मेरुसम निश्चल रहा । तब गर्जना करते हुए सिंहवाहन के ऊपर बैठकर चारों दिशाओं को प्रकाशित करती हुई अंबिकादेवी पुनः प्रत्यक्ष होकर कहती है, ''हे वत्स ! तेरे दृढ सत्त्व से मैं प्रसन्न हूँ, तुम मुझसे वरदान माँगो ।'' देवी के इन वचनों को सुनकर रत्नश्रावक कहता है, ''हे माँ ! इस महातीर्थ के उद्धार के सिवाय मेरा अन्य कोई मनोरथ नहीं है, आप मुझे श्री नेमिनाथ प्रभु की ऐसी वज्रमय मूर्ति दीजिए जो शाश्वत रहे, और जिसकी पूजा से मेरा जन्म कृतार्थ बने एवं पूजा करनेवाले अन्य जीव भी हर्षोल्लास को प्राप्त करें !'' अंबिका देवी कहती है, ''सर्वज्ञ भगवंत ने तेरे द्वारा तीर्थ का उद्धार होगा ऐसा कहा है इसलिए तुम मेरे साथ चलो ! मेरे पीछे-पीछे इधर-उधर देखे बिना चले आओ'' । रत्नश्रावक देवी के पीछे-पीछे चलने लगा । बायीं तरफ के अन्य शिखरों को छोडती हुई देवी पूर्व दिशा की तरफ, हिमाद्रिपर्वत के कंचन शिखर पर गयी, जहाँ सुवर्ण नामक, गुफा के पास आकर देवी सिद्धविनायक नामक अधिष्ठायक देव को विनती करती है, 'भद्र ! इन्द्र महाराजा के आदेश से आप

इस शिखर के रक्षक हो अतः यह द्वार खोलो ।'' देवी के आदेश से सिद्धविनायक ने तुरंत ही गुफा के द्वार खोले, तब अंदर से दिव्यतेजपुंज प्रगट हुआ और आगे-आगे अंबिकादेवी और पीछे-पीछे रत्नश्रावक ने इस दिव्य गुफा में प्रवेश किया। सुवर्ण मंदिर में बिराजमान विविध मणि, रत्नादि की मूर्तियों को बताते हुए अंबिका देवी कहती है, ''हे रतन ! यह मूर्ति सौधर्मेन्द्र ने बनायी है, यह मूर्ति धरणेन्द्र ने पद्मरागमणि से बनायी है, यह मूर्तियाँ भरत महाराजा, आदित्ययशा, बाहुबली आदि के द्वारा रत्न, माणेक आदि से बनवायी गयी है तथा दीर्घकाल तक उन्होंने इन बिंबो की पूजा-भक्ति की है । यह ब्रह्मेन्द्र के द्वारा रत्न-मणि का सार ग्रहण करके बनवायी गई है जो शाश्वत मूर्ति के समान असंख्य काल तक उनके ब्रह्मलोक में पूजी गयी है । यह राम और कृष्ण के द्वारा बनायी गयी है । इन मूर्तियों में से जो पसंद हो वह ग्रहण करो ।''

मानव के मन को चुरानेवाली ऐसी मनोरम्य देवाधिदेव की दिव्य मूर्तिओं को देखकर रत्नश्रावक प्रसन्नता के परमोच्च शिखरों को पार करने लगा । आज उसके हर्ष का पार नहीं था । सभी प्रतिमाएँ बहुत सुंदर थी । कौन सी प्रतिमा पसंद करनी, इसका निर्णय करना अति कठिन कार्य बन गया था । अंत में उसने मणिरत्नादिमय जिनबिंब को पसंद किया तब अंबिका देवी ने कहा, ''हे वत्स ! भविष्य में दूषमकाल में लोग लज्जारहित, निष्ठुर, लोभ से ग्रस्त एवं मर्यादा रहित होंगे । वे इस मणिरत्नमय जिनबिंब की आशातना करेंगे । तुझे इस तीर्थ का उद्धार करने के बाद बहुत पश्चात्ताप होगा । इसलिए इस मणिरत्नमय मूर्ति का आग्रह छोड़कर ब्रह्मेन्द्र द्वारा रत्न-माणिक्य के सार से बनवायी गयी सुदृढ, बिजली आंधी, अग्नि, जल, लोहा, पाषाण अथवा वज्र से भी अभेद्य महाप्रभावक ऐसी इस प्रतिमा को ग्रहण करो !'' इतना कहकर देवी ने १२ योजन दूर तक प्रकाशित होनेवाले तेजोमय मंडल को अपनी दिव्य शक्ति से खींचकर सामान्य पाषाण के समान तेजोमयप्रभा रहित प्रतिमा बनाकर कहा, ''अब इस मूर्ति को कच्चे सूत के तार से बाँधकर आगे-पीछे या बाजु में देखे बिना शीघ्रातिशीघ्र ले जाओ ! यदि मार्ग में कहीं पर भी विराम करोगें तो यह मूर्ति उसी स्थान पर स्थिर हो जाएगी ।'' रत्नश्रावक को इस तरह सूचना देकर अंबिकादेवी स्वस्थान पर वापिस लौटी ।

अंबिकादेवी की असीम कृपा के बल से प्राप्त प्रतिमा को लेकर रत्नश्रावक देवी के आदेशानुसार आगे-पीछे या बाजु में देखे बिना अस्खलित गति से कच्चे सूत के तार से बाँधे गए इस बिंब को, मानों कपास न ले जा रहा हो ! उस तरह इस जिनबिंब को जिनालय के मुख्य द्वार तक लाते है । उस अवसर पर वह सोचता है कि जिनालय में स्थित पूर्व की लेपमय प्रतिमा को हटाकर अंदर की भूमि की प्रमार्जना कर सफाई न करूँ, तब तक इस नवीन जिनबिंब को यहीं रखू । प्रासाद के अंदर सफाई

कर, बाहर आकर रत्नश्रावक ने जब नवीन बिंब को अंदर ले जाने का प्रयास किया, तब वह प्रतिमा उसी स्थान पर मेरुपर्वत की तरह करोडों मनुष्यों से भी चलायमान न हो सके, उस तरह अचल बन गयी । इस अवसर पर रत्नश्रावक चिंतातुर होकर चारों ही आहारपानी का त्याग कर, पुनः अंबिकादेवी की आराधना में मग्न बन जाता है । निरंतर सात दिन के उपवास के अंत में अंबिकादेवी पुनः प्रगट होकर कहती है, ''हे वत्स ! मैंने तो तुम्हे पहले ही कहा था कि मार्ग में कही पर भी विराम किए बिना इस बिंब को ले जाकर पधराना ! व्यर्थ प्रयास करने का कोई अर्थ नहीं । अब कोई भी हालत में यह प्रतिमा नहीं हटेगी। अब इस प्रतिमा को यथावत रखकर पश्चिमाभिमुख द्वारवाला प्रासाद बनवाओ ! अन्य तीर्थो में तो उद्धार करनेवाले दूसरे कई मिलेंगे, परन्तु हाल में इस तीर्थ के उद्धारक तुम ही हो इसीलिए इस कार्य में विलंब मत करो ।''

इस तरह सूचना कर अंबिकादेवी अंतर्धान हो गयी । रत्नश्रावक भी सूचनानुसार पश्चिमाभिमुख प्रासाद बनवाता है । सकल संघ के साथ हर्षोल्लास पूर्वक प्रतिष्ठा महोत्सव करवाता है, जिसमें आचार्यों के द्वारा सूरिमंत्र के पदों से आकर्षित बने हुए देवताओं ने उस बिंब और चैत्य को अधिष्ठायक युक्त बनाया । रत्नश्रावक अष्टकर्मनाशक अष्टप्रकारी पूजा कर, लोकोत्तर ऐसे जिनशासन की गगनचुंबी गरिमा को दर्शानेवाली महाध्वजा को लहराकर, उदारतापूर्वक दानादि विधि पूर्ण कर, भक्ति से नम्र बनकर, नेमिनाथ प्रभु के सन्मुख खडे रहकर स्तुति करता है ।

''हे अनंत ! जगन्नाथ ! अव्यक्त ! निरंजन ! चिदानंदमय ! और त्रैलोक्यतारक ऐसे स्वामी ! आप जय को प्राप्त हों, हे प्रभु ! जंगम और स्थावर देह में आप सदा शाश्वत हैं, अप्रच्युत और अनुत्पन्न हैं, और रोग से विवर्जित हैं । देवताओं से भी अचलित हैं, देव, दानव और मानव से पूजित हैं, अचिन्त्य महिमावंत हैं, उदार हैं, द्रव्य और भाव शत्रुओं के समूह को जीतनेवाले हैं, मस्तक पर तीन छत्र से शोभायमान, दोनों तरफ चामर से विंझे जाते, और अष्टप्रातिहार्य की शोभा से उदार ऐसे, हे विश्व के आधार ! प्रभु ! आपको नमस्कार हो !

भावविभोर बनकर स्तुति करने के बाद रत्नश्रावक पंचांग प्रणिपात सहित भूतल को स्पर्श कर अत्यन्त रोमांचित होकर, साक्षात् श्री नेमिप्रभु को ही न देखता हो, उस तरह उस मूर्ति को प्रणाम करता है । उस समय उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर अंबिकादेवी क्षेत्रपालादि देवताओं के साथ वहाँ आती है और रत्नश्रावक के गले में पारिजात के फूलों की माला पहनाती है । बाद में रत्नश्रावक कृतार्थ होकर स्वजन्म को सफल मानकर सौराष्ट्र की भूमि को जिनप्रसादों से विभूषित कर सात क्षेत्रों मे संपत्ति स्वरूपबीज को बोनेवाला, वह परंपरा से मोक्षसुख का स्वामी बनेगा ।

वर्तमान श्री नेमिनाथ जिनालय का इतिहास

गुर्जरदेश के पाटण नगर की समृद्धि उस काल में कुछ और ही थी । आचार्य हेमचंद्रसूरि महाराज साहेब के उपदेश से, पाटण से गिरनार और शत्रुंजय महातीर्थ का छ'री पालित पैदल यात्रा संघ निकला था । श्री संघ आचार्य भगवंत सहित वणथली (वंथली) नामक गाँव के बाहर ठहरा था । संघ के नर-नारी स्नान आदि क्रिया कर, बहुमूल्य वस्त्र पहनकर, रत्नजडित आभूषण धारणकर, परमात्मा के जिनालय में, दर्शन-पूजा आदि परमात्मा की भक्ति में मग्न थे, संघपति के पास भी बहुत धन था । यह सब देखकर सोरठ के राजा रा'खेंगार की नीयत बिगडी । उसका पाटण के इस धनाढय यात्रा संघ को लूँटने का इरादा था । उनसे उसको बहुत धन और सोना-चाँदी-रत्नो के आभुषण मिलने की बड़ी आशा थी ।

बंदर को सीढ़ी मिल जाये, वैसे ही मित्रों ने राजा को प्रेरित किया, ''राजन् ! आपके प्रचंड पुण्यप्रताप से आज गुर्जरदेश के पाटण नगर का धन और लक्ष्मी आपके यहाँ सामने से आई है । राजन् ! इस संघ को लूँट लो ! जिससे आपका धनभंडार भी भर जायेगा ! मित्रों की इन बातों को सुनकर राजा का मन भी पिघल गया और संघ का सर्वस्व लूँट लेने का मनोरथ उठा। परंतु राजमर्यादा का भंग और अपयश का डर उसे सता रहा था । धन को किस तरह लूँटा जाये उसका विचार राजा करने लगा । संघ को लूँटने के दुष्ट इरादे से, संघ को एक दिन और रोकने का उपाय अजमाया । दूसरे दिन राजकुटुंब में किसी बड़े की मृत्यु हो गई । उस दौरान आचार्य भगवंत ने रा'खेंगार की दुष्ट नीयत को जान लिया, इसलिए उन्होंने इस मृत्यु के बहाने राजमहल में रा'खेंगार को उपदेश देते हुए नीति के मार्ग पर चलने की हितशिक्षा दी । श्री संघ वहाँ से रवाना होकर श्री शत्रुंजय महातीर्थ की यात्रा करके पुनः पाटणनगर आ पहुँचा ।

पाटण नरेश राजा सिद्धराज को रा'खेंगार के इस दुष्ट विचार के समाचार मिलते ही उसने सोरठ देश पर चढ़ाई करके सं. ११७० में रा'खेंगार को हराकर कैद कर लिया और हमेशा के लिए उसकी राक्षसीलीला का अंत हुआ । उस समय महाराजा सिद्धराज का मंत्री सज्जन उंदिरा से खंभात जा रहा था । तभी बीच में सकरपुर नामक गाँव में भावसार के यहाँ उतरा। भावसार के घर में कडाई में सोनामोहरें भरी हुई थी फिर भी किसी कारणवश उसे वह कोयला ही समझता था । सज्जनमंत्री ने पूछा, ''भाई ! ये सोना-मोहरें उसमें क्यों रखी हैं ?'' भावसार ने सज्जन मंत्री को पुण्यवान समझकर सब सोना-मोहरें उसे दे दी सज्जनमंत्री ने भी पराये धन को ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा की वजह से वह सोनामोहरें राजा सिद्धराज को अर्पण कर दी ।

राजा भी सज्जन मंत्री को नाम जैसे गुणवाला, शुद्ध नैतिक भावनावाला श्रावक मानकर बहुत खुश हुआ और राज्य में ऊँचा ओहदा देने का निर्णय किया । रा'खेंगार को हराकर, उसकी मृत्यु के बाद, महामंत्री बाहड के सूचन से सज्जनमंत्री को सौराष्ट्र के दंडनायक के रूप मे नियुक्त किया ।

प्रतिभाशाली प्रज्ञावान, कार्यक्षेत्र में कुशल, दीर्घदृष्टि एसे सज्जन में कार्य करने की विशिष्ट शक्ति होने के कारण उसने अल्प अवधि में ही सोरठ की प्रजा का स्नेह प्राप्त कर लिया था । सोरठ देश के कार्यभार के लिए सज्जनमंत्री ने जूनागढ़ को मुख्यस्थान बनाया । सोरठ देशकी शान बढ़ाने के लिए उसने अनंत प्रयत्न करके सफलता हासिल की । कुछ समय बाद गिरनार, गिरिवर पर यात्रा करने का प्रसंग आया तब एकदम जीर्ण हुए जिनालयों की दुःसह्य परिस्थिति को देखा । एक के बाद एक जिनालय खंडहर बनते जा रहे हैं, यह देखकर, सज्जन बहुत ही दुःखी हो गया । महाराजा सिद्धराज की हुकुमत में जिनेश्वर परमात्मा के जिनालयों की यह हालत ! उसका मन व्यथित हो उठा । उस समय राजगच्छ के एकांतर उपवास तप की आराधना करनेवाले आचार्य भद्रेश्वरसूरि के शुभ उपदेश से, सज्जन मंत्री ने जीर्ण-शीर्ण हालत में रहे, काष्ठ के बने हुए, श्री नेमिनाथ परमात्मा के मुख्य जिनालय का, नींव के साथ संपूर्ण जिर्णोद्धार करवाने का संकल्प किया ।

शुभमुहूर्त पर गिरिवर के जिनालय का जीर्णोद्धार प्रारंभ हुआ । कुशल कारीगर अपनी कला का कमाल दिखाने लगे। खंडहर होनेवाले मंदिर, महल स्वरूप बनने लगे । गिरिराज के शिखर पर टाँकने की गूँज सुनाई देने लगी । सज्जन अपनी सर्वशक्ति जिनालय के नवनिर्माण में लगा रहे थे । एक तरफ सोरठ देश का राजकार्य दूसरी तरफ जिनालय का जीर्णोद्धार ! इन दो महत्त्वपूर्ण कार्यों में सतत व्यस्त रहने वाले सज्जन को जीर्णोद्धार के लिए आवश्यक धन की चिंता सताने लगी । वे चाहते तो सौराष्ट्र के गाँव-गाँव में घूमकर अपार धन-संपत्ति इकट्ठी कर सकते थे, परंतु राज्य की जवाबदारी की वजह से यह काम संभव नहीं था । इसलिए सोरठ देश की ३ वर्ष की जो आमदनी, राजभंडार में जमा करानी थी, वह उन्होंने जीर्णोद्धार के काम में लगा दी। कुछ समय बाद सौराष्ट्र के गाँव-गाँव से वह रकम इकट्ठी करके राजभंडार में जमा कर देंगे, ऐसा निर्णय लेकर ७२ लाख द्रम्म जितनी रकम जीर्णोद्धार के कार्य में लगा दी ।

विघ्न संतोषियों को ढुंढना नहीं पडता । गिरनार के इस सर्वोत्तम कार्य करते हुए सज्जनमंत्री के उत्कर्ष को सहन न करनेवाले लोगों ने पाटण नरेश महाराजा सिद्धराज के कान भरे । सौराष्ट्र के सज्जनमंत्री ने तीन-तीन साल से सोरठदेश की आमदनी में से एक कोडी भी राजभंडार में जमा नहीं की है, जरूर दाल में कुछ काला है । ऐसी जूठी शंका पैदा करके सिद्धराजा को

भडकाने का षड्यंत्र रचना शुरु किया । महाराजा सिद्धराज भी द्वेष से जलते इस राजपुरुष की बातें सुनकर गरम हो गये। और स्वयं जूनागढ़ जाकर राजकार्य का हिसाब लेने के लिए आतुर हो उठे । राजा को सज्जन के प्रति अनहद अविश्वास जाग उठा । अब कैसे भी करके बाजी हाथ में रखना मुश्किल हो रहा था । महामंत्री बाहड परिस्थिति को जानकर इस समाचार को तुरंत ही जूनागढ़ सज्जनमंत्री तक पहुँचाना चाहते थे । एक पवनवेगी ऊँटनी और सवार के द्वारा बाहड मंत्री ने महाराजा सिद्धराज का समाचार सज्जनमंत्री तक पहुँचाया । कुशाग्र बुद्धि सज्जनमंत्री परिस्थिति को भाँप गये । सोरठ की आमदनी की रकम अब कैसे भरी जाये उस विचार में सज्जन खो गये । विचार करते-करते उनको प्रथम वंथली तीर्थ का ध्यान आया। वंथली तीर्थ के रिद्धि-सिद्धिवाले, गिरनार तीर्थ के लिए तन-मन-धन न्योछावर करनेवाले श्रावकों का उत्साह उनके स्मृतिपथ पर आने लगा ।

जिर्णोद्धार तथा सोरठदेश की राज्यव्यवस्था के कार्य में व्यस्त ऐसे सज्जनमंत्री ने सिद्धराजा के आगमन पूर्व जीर्णोद्धार कार्य में लगी सोरठ देश की आमदनी जितनी रकम इकट्ठी करने के लिए वंथली की ओर प्रयाण किया । महाजनों को इकट्ठा करके गिरनार जिनालय के जीर्णोद्धार की रकम की बात पहले बताई, गाँव के श्रेष्ठियों के बीच अपनी ओर से जितनी हो सके उतनी रकम लिखवाने के लिए होड लगने लगी । सभा की भरचक भीड को दूर करता हुआ, मैले-फटे पुराने कपड़े पहना हुआ एक आदमी आगे आने की कोशिश कर रहा था । तब धाकधमाल के कारण आवेश में आया हुआ एक श्रेष्ठि चिल्लाया कि, ''अरे, तेरे लिए वहाँ क्या खाने का रखा है ? गिरिवर के लिए चंदा इकट्ठा कर रहे हैं । उसमें विघ्न डालने तू कहाँ जा रहा है ? दो पैसे देने की भी तेरी औकात है ? वह आदमी तो सबकी उपेक्षा करके मौन धारण कर आगे बढ़ता सज्जनमंत्री के पास पहुंच गया । सज्जनमंत्री के पास में जाकर कान में कहा की, ''मंत्रीश्वर ! इस महाप्रभावक गिरनार के लिए मैं मेरा सब कुछ देने को तैयार हुँ, तो फिर आप सोरठ देश की तीन साल की आमदनी जितनी रकम के लिए क्या कर रहे हो ? इस गरीब पर दया करके इसका लाभ मुझे लेने दो । सज्जनमंत्री तो दो मिनट के लिए स्तब्ध रह गये । ऐसे मैले-फटे पुराने वस्त्रवाला मनुष्य और संपूर्ण रकम देने को तैयार यह कौन है ? सोच में पड़े हुए सज्जन उसे पुछते हैं कि, ''आपका नाम ?'' नम्रता के साथ उत्तर मिलता है, ''भीम साथरिया, मंत्रीश्वर ! गाँव के श्रेष्ठि तो महाभाग्यवान है, उनको तो दान-पुण्य का मौका पल-पल मिलता ही है । आज इस गरीब को दो पैसे का पुण्य कमाने का मौका दे दो, तो मेरा जीवन भी धन्य बन जायेगा ।'' ऐसे कहकर समस्त सभाजन के समक्ष अपनी भावना व्यक्त कर, सज्जनमंत्री का चरण-स्पर्श कर, अपनी झोली फैलाता है ।

सज्जनमंत्री भीड के बीच भीमा साथरिया की भावना का मान रखकर, समस्त महाजन की सहकार देने की भावना को स्वीकार करने की असमर्थता दिखाते हैं। भीमा साथरिया जीर्णोद्धार के लिए रकम देने का वचन लेकर मंत्रीश्वर वापिस जुनागढ़ आते हैं। वहाँ महाराजा सिद्धराज के नजदीक पहुँचने के समाचार मिलते हैं। सुबह में महाराजा का प्रवेश होता है उस समय जुनागढ़ के नगरजन ठाठमाठ से महाराजा का स्वागत करते हैं और उनको बधाई देते हैं। महाराजा सिद्धराज के महल में आते ही सज्जन सिर झुकाकर महाराजा को उनके स्वास्थ्य के बारे में पुछता है। तब सज्जनमंत्री के दुष्ट व्यवहार की झुठी बातों से भडके हुए महाराज के अंदर की ज्वाला बाहर आई। उन्होंने कहा की, ''आपके जैसा विश्वासघाती और राजद्रोही इस राज्य में ऊँचे पद पर नियुक्त हो, वहाँ स्वस्थता कहाँ से आयेगी ?'' सोरठ देश के तीन साल की आमदनी का हिसाब कहाँ है ?'' महाराज की निरर्थक चिंता का जानकार सज्जन शांत मन से जवाब देता है, ''महाराज ! राज के आमदनी की एक-एक पाई का हिसाब तैयार है। आप कृपालु, सफर की थकान उतारने के लिए थोडा आराम फरमाये !''

सज्जनमंत्री के दृढतापूर्वक, निर्भय भरे जवाब से महाराज सिद्धराज पल दो पल में ठंडे हो गये। अपने निरर्थक गुस्से के लिए उनको पश्चात्ताप होने लगा। पुरे दिन नगरवासियों के मुँह से सज्जनमंत्री की कार्यकुशलता और राजकार्य की खुले दिल से प्रशंसा सुनी, साथ में सज्जनमंत्री के द्वारा बनवाये गए जिनालय के सुंदर जिर्णोद्धार के बारे में भी सुना। सूर्यास्त के समय महाराज ने मंत्री को बुलाकर सुबह में संकलगाँव से निकलकर गिरनार गिरिवर पर आरोहण करने की अपनी भावना व्यक्त की।

मंगलमय प्रभात में महाराज और मंत्री गिरि आरोहण कर रहे थे, उस समय शिखर पर शोभित धवलचैत्य और आकाश को छुने के लिए उड़ती ध्वजा की शोभा को देखकर, महाराज पुछते है, ''कौन भाग्यवान माता-पिता है ? जिसके संतान ने ऐसे सुंदर, मनोहर जिनालयों की हारमाला का सर्जन किया ? तब मंत्री कहता है, ''स्वामी ! आप। पूज्यश्री के माता-पिता का ही यह सौभाग्य है जिससे आप जैसे महापुण्यशाली के प्रताप से यह अप्रतिम सर्जन हुआ है।

आश्चर्यचकित महाराज पलभर के लिए मंत्रमुग्ध बनकर इस बात का रहस्य मंत्री को पुछते हैं तब मंत्री कहता है, ''हे स्वामी ! आपके पुण्यप्रभाव से ही यह अप्रतिम सर्जन हुआ है और आपके पिता कर्णदेव, और माता मीनलदेवी भाग्यवान है की आप जैसे शूरवीरपुत्र गुर्जर नरेश ने पूज्य पिताजी की स्मृति में ऐसे देदिप्यमान जिनालयों का सर्जन किया है। सोरठ देश की धन्यधरा की तीन-तीन साल की आमदनी इस जिनालय के नवनिर्माण में खर्च हुई है जिसके प्रभाव से ये मंदिर मन को मोहित कर रहे हैं। आप कृपालु ही सोरठ देश के स्वामी हो इसलिए आपके पिता कर्णदेव और माता मीनलदेवी धन्य बने

है । ''कर्णप्रासाद'' नामक इस जिनालय से गिरनार की शोभा में वृद्धि हुई है, जो आपके पिताजी की स्मृति को अविस्मरणीय बनाने में समर्थ है । फिर भी आप स्वामी को, सोरठ की तीन साल की आमदनी राजभंडार में जमा करवानी हो, तो एक एक पाई के साथ रकम भंडार में जमा करने के लिए, नजदीक के वणथली गाँव का श्रावक भीमा साथरिया, अकेला ही पूरी रकम भरने के लिए तैयार है और अगर जिर्णोद्धार का उत्कृष्ट लाभ लेकर आत्मभंडार में पुण्य जमा करवाना हो तो यह विकल्प भी आपके लिए खुला है ।''

सज्जनमंत्री के इन शब्दों को सुनकर महाराज सिद्धराज सज्जनमंत्री पर बहुत खुश होते हैं और कहते हैं, ''ऐसे मनोरम्य, सुंदर जिनालयों का महामुल्यवान लाभ मिलता हो तो मुझे उन तीन साल की रकम की कोई चिंता नहीं । मंत्रीवर ! आपने तो कमाल कर दिया । आपकी बुद्धि, कार्यपद्धति और वफादारी के लिए मेरे हृदय में बहुत गौरव हो रहा है । मंत्रीवर ! आपके लिए मुझे जो शंका-कुशंका हुई उस के लिए मैं क्षमा माँगता हूँ । आज मैं भी धन्य बन गया हूँ ।''

इस तरफ मंत्रीश्वर के समाचार की राह देख रहा भीमा साथरिया बेचैन है, कि अभी तक सज्जनमंत्री के कोई समाचार क्यों नही आये ? क्या मेरे मुँह तक आया हुआ पुण्य का यह अमृत कलश युँही चला जायेगा ? सतत चिंतामग्न बने हुए भीमा की धीरज कम होने लगी है और अधीर बना हुआ भीमा जुनागढ़ की तरफ प्रयाण करता है । मंत्रीजी को जिर्णोद्धार के लिए रकम के समाचार नहीं भेजने का कारण पुछता है, सज्जन ने हकीकत बताई तो भीमा को बहूत आघात लगा, हाथ में आई हुई पुण्य की घड़ी ऐसे ही निकल जाने से वह दो क्षण के लिए अवाचक बन गया । पुनः स्वस्थ होते ही उसने कहा की, ''मंत्रीश्वर ! जिर्णोद्धार दान के लिए रखी हुई रकम अब मेरे कुछ काम की नहीं, इसलिए आप इस द्रव्य को स्वीकार करके उसका योग्य उपयोग करे ।

वंथली गाँव से भीमा साथरिया के धन की बैलगाडियाँ सज्जन मंत्री के आंगन में आकर खड़ी हुई । विचक्षण बुद्धि सज्जन ने इस रकम से ''मेरकवशी'' नामक जिनालय का और भीमा साथरिया की अविस्मरणीय स्मृति के लिए शिखर के जिनालय के समीप ''भीमकुंड'' नामक एक विशाल कुंड का निर्माण करवाया ।

श्री नेमिनाथ परमात्मा के शासन की अधिष्ठायिका अंबिकादेवी की उत्पत्ति

सोरठ देश के शृंगार स्वरूप रैवताचल पर्वत की दक्षिण दिशा में दाक्षिण्यता और न्याय से रक्षित बना हुआ और समृद्धि में कुबेर समान मानवों से भरपूर ऐसा कुबेर नामक एक उत्तम नगर था । जहाँ आश्चर्य के अवलोकन से नगर जनों के नेत्ररूपी कमल विकसित हों, वैसे कमलवन थे । जहाँ शत्रुओं की श्रेणी को नाश करनेवाला ऊँचा किल्ला था । जहाँ पाप का प्रलय करनेवाले मंदिर थे, और प्रत्येक चैत्य में अरिहंत परमात्मा की आश्चर्यदायक प्रतिमा की भक्ति के पुण्य प्रभाव से नगरजन लक्ष्मी संबंधी सुख को प्राप्त कर रहे थे । इन्द्र समान यशनामकर्म के उदय के गुणवाला, शत्रु रूपी गजेन्द्र को हराने में वनकेसरी, प्रयत्न किए बिना मनोवांछित दान कर्ता, यादववंश के रत्नरूप कृष्ण नामक राजा राज्य करता था । ''इस जगत में रत्नत्रयी का आधार धर्म ही है ।'' यह बात बताने के लिए निशान रूप तीन सूत के धागे से सुशोभित अंगवाला, मुनि भगवंतो की वाणी के अमृतरस से सिंचन किए हुए बोधि वृक्षवाला, अद्‌भुत मनोहर विद्या को धारण करनेवाला देवभट्ट नामक ब्राह्मण था । उसकी देवल नामक धर्मपत्नी थी । उसे सोमभट्ट नामक पुत्र था । शैशव और कुमार अवस्थाओं को पार कर सोमभट्ट यौवनावस्था को प्राप्त हुआ, तब शील आदि अनेक गुणों के समूह से अलंकृत ऐसी साक्षात् लक्ष्मी समान अंबिका नामक कन्या के साथ उसकी शादी हुई। कालक्रम से देवभट्ट ब्राह्मण की मृत्यु के साथ-साथ मिथ्यात्व से कलुषित ऐसे उसके घर से जैन धर्म भी दूर हो गया । और वे निरंतर श्राद्ध के दिनों में कौए को पिंड देना, नित्य पीपल के वृक्ष की पूजा करनी आदि प्रवृत्ति करने लगे । अंबिका उनके साथ रहते हुए भी भद्रक परिणामी होने से जैन धर्म में दृढ थी ।

एक बार देवभट्ट ब्राह्मण के श्राद्ध का दिन होने से खीर आदि विविध भोजन रसोईघर में तैयार हुए । उस दिन दोपहर के समय शम और संवेग की साक्षात् मूर्ति समान मासोपवासी मुनियुगल भिक्षा के लिए उसके घर पधारे । तप और क्षमा से मानों सूर्य, चंद्र के जैसे न हों, ऐसे मुनि युगल को निहालकर हर्ष विभोर बनी हुई, प्रकृष्ट भक्तिभावना के कारण रोमांचित देहवाली अंबिका विचार करती है, ''अहो ! आज इस पर्व के दिन अखिल विश्व को पवित्र बनाने में समर्थ ऐसे मुनि भगवंतों का मेरे घर आगन में पदार्पण होने के कारण मेरा पुण्य प्रकर्ष बना, मुनिदर्शन से नेत्र निर्मल बने, इस समय मेरे सासुजी भी घर में नहीं है और साधु भगवंत के प्रायोग्य निर्दोष भोजन भी तैयार है, तो इस सुवर्ण अवसर पर श्रमण भगवंतो को सुपात्र दान कर मेरे मनुष्य भव को सफल करुं ।'' इस तरह चिंतन करती हुई अंबिका स्वस्थान से उठकर भक्तिसभर हृदय से स्वयं के घर

में रहे हुए शुद्ध अन्न-पानी आदि भोजन के द्वारा स्वयं को लाभ प्राप्त हो, ऐसे लक्ष्य के साथ मुनि भगवंतो को भाव-भरी विनंति करती है । शास्त्राभ्यास में प्रवीण ऐसे महात्मा भी बहुत शोध करके, स्वयं प्रायोग्य ऐसे भोजनादि-द्रव्य और भाव उभय से शुद्ध जानकर, ४२ दोष रहित भिक्षा को ग्रहण कर धर्मलाभ पूर्वक आशिष देकर स्वस्थान पर लौटे । अंबिका के हृदय में सुपात्रदान रूपी घंटनाद का रणकार चलता ही रहा और सतत स्वयं को प्राप्त लाभ की अनुमोदना करते करते अपार पुण्य राशि के संचय के द्वारा सुकृत के लाभ का गुणाकार कर रही थी ।

अंबिका के हृदय के भाव आसमान को छूँ रहे थे तब पडोसन को मुनिदान के दृश्य से ईर्ष्या हुई । और अपना विकृत मुँह बनाकर साक्षात् राक्षसी की तरह स्वयं के घर से निकलकर दोनों हाथ उछालती हुई सभी पडोसियों के बीच अंबिका को उपालम्भ देने लगी, ''हे स्वच्छंदचारिणी बहू ! तुम्हें धिक्कार हो ! यह तेरा कैसा विचित्र आचरण है ? आज इस श्राद्ध के दिन अभी तक तो पितृजन को पिंडदान भी करने में नहीं आया, देवताओं कोभी पिंडादि अर्पण नही किया है । ब्राह्मणों को भी भोजन नहीं कराया, उससे पहेले ही सिरमुंडे को दान देकर तुमने तो पूरा भोजन जूठा कर दिया ! सासु घर पर नहीं है इसीलिए तुम ऐसा स्वच्छंद वर्तन कर रही हो ? वैश्य कुलक योग्य तेरा यह आचरण बिलकुल भी योग्य नहीं है !'' इस तरह पागल बनी पडोसन आवाज करते हुए उसके घर में घुसकर उसकी सासु को बुलाने लगी और अंबिका के द्वारा की गयी प्रवृत्ति में मीर्च-मसाला मिलाकर, उसने दुराचरण किया है इस तरह बताकर उसकी सास को भी क्रोधातुर बना दिया । उसकी सासु भी सुनी-सुनायी बातों पर विश्वास पर क्रोधांध बनकर अंबिका के उपर बरसने लगी ।

''अरे रे हीनकुलवाली ! दुराचारिणी ! मेरे जिंदा होते हुए भी तुम यह स्वच्छंद वर्तन क्यों कर रही हो ? मै तो अभी जीवीत हूँ, इस तरह तुम्हें दान देने के लिए सत्ता किसने सौंपी ?'' इन कुवचनों से अंबिका को डाँटने लगी तब अंबिका अंदर से कांपने लगी । उस समय उसका पति सोमभट्ट भी ब्राह्मणें को बुलाकर अपने घर आया । तब वह माता और पडोसन के वचनो से क्रोधित बनकर अंबिका पर तिरस्कार की झडी बरसाने लगा । उस समय निरपराधी होते हुए भी, सभी के कठोर वचनों को सुनकर, मनमें अत्यन्त दुःखी होते हुए भी अंबिका मौन पूर्वक अपने पुत्र युगल को लेकर, गृह त्याग कर, रुदन करती हुई रास्ते पर विचार करती है कि-

''अहो ! मैने अपने सास-ससुर के एक भी वचन का आज दिन तक उल्लंघन नहीं किया, नित्य पति की भक्ति में तत्पर रही, उभय कुल में चर्चास्पद बने ऐसा एक भी अप्रिय कार्य नहीं किया, अरे ! देह को दुःख देकर भी घर के सभी कार्य करती

हूँ, फिर भी मुझ निरपराधी का जनसंपदा तिरस्कार करती है, अरे ! आज पर्व के पुण्य दिन में साधु युगल को निर्दोष भिक्षा दान कर उभय कुल को कल्याणकारी ऐसा कार्य करते हुए भी मिथ्यात्व से अंध बने, वे मुझे निरर्थक हैरान करते हैं । कैसा महामिथ्यात्व का उदय है ! जिसके कारण ये लोग अतिशय सूखे हुए वृक्ष को जल सिंचन के द्वारा फलवत् बनाने के निरर्थक प्रयत्नों की तरह; पुत्रों के द्वारा दिए गए पिंडादि के द्वारा मरे हुए प्राणियों को प्रसन्न करने के निरर्थक प्रयत्न करते हैं, जिस तरह उल्लु सूर्यप्रकाश को देखने में असमर्थ होने के कारण सूर्य की निन्दा करता है उसी तरह ये मिथ्यात्वी लोग अनंत पुण्य फल को देनेवाले सुपात्रदान की निन्दा करते हैं । अब मेरे लिए इस विषय पर विचार करना व्यर्थ है । मैने तो इस सुकृत द्वारा मेरे दान के फल को अच्छी तरह से गांठ बांधकर सुरक्षित कर लिया है । बस ! अब मैं उसकी अनुमोदना करूँ, गृहवास का त्याग कर भवसमुद्र में शरण करने योग्य उस मुनियुगल का शरण स्वीकार करती हूँ । अब मै रैवतगिरि पर जाकर इष्टदेव ऐसे जिनेश्वर परमात्मा का ध्यान कर, अपने अनंत भवों के अशुभकर्मों का नाश करने के लिए निरंतर तप करुँ,'' ऐसा विचार करते हुए स्वस्थ चित्तवाली बनकर अंबिका एक बालक को कमर में उठाकर, दूसरे को हाथ की अँगुली पकडाकर नेमिप्रभु का ध्यान करती हुई रैवताचल पर्वत की तरफ बढी ।

अनेक दुःखो से आकुल-व्याकुल अंबिका नगर से बाहर थोडी दूर पहुँचती है, तब कमर में रहा हुआ विभुकट नामक छोटा बालक अस्पष्ट शब्दों द्वारा बोलता-बोलता रोने लगा । अतितृषा लगने से उस बालक के मुखकमल से लार और आँखों से अश्रुधारा बह रही थी । वह पानी-पानी कहकर आक्रन्द करने लगा । उसी समय अंगुली पकडकर रहा हुआ दूसरा शुभंकर नामक बालक भूख से पीडित और मार्ग पर सतत चलने की थकावट के कारण बोलने लगा, ''हे माता ! मुझे खाने को दो ! हे माता मुझे भोजन दो ! मुझे भूख लगी है !'' मक्खन के पिंड जैसे सुकोमल बालकों की वेदना की चीख सुनकर अंबिका व्याकुल बन जाती है ।

ग्रीष्म ऋतु के सूर्य के तेज से तपी हुई पृथ्वी पर भूख-प्यास आदि अनेक दुःखों से दुःखी बनी अंबिका विचार करती हैं कि ''मुझे धिक्कार हो ! मैं अपने बच्चों की भूख-प्यास को शांत करने में असमर्थ हूँ । हे विधाता ! तुमने इस तरह मात्र दुःख से भरी हुई ऐसी, मेरा सर्जन क्यों किया ? हे धरती माता ! मुझे अवकाश दो ! जिससे मैं उसमें प्रवेश कर अपने सर्व दुःखों का नाश करूँ, मेरे पूर्व भवों के विषम कर्मों का ही यह विपाक है, जिससे मुझ पर सभी दुःख एक साथ टूट पडे । खैर ! जो होना हो सो हो अब तो मैं इन दुःखों को अवश्य स्वीकार करूँगी । बस ! मात्र जिनेश्वर परमात्मा की शरण ही

मेरे हृदय में स्थापित हो !'' यह चिंतन कर अंबिका एक वृक्ष के नीचे बैठी तब थोडी दूर पर उसने स्वच्छ शीतल जल से भरा हुआ एक पवित्र सरोवर देखा । इतने में ही उसकी दोनों तरफ कोयल के टहुकार के शब्दों के साथ पक्के हुए आम्र फलों की शाखा उसके हाथ में आयी । अंबिका ने तुरंत ही बालकों को सरोवर का पानी पिलाकर, तात्कालिक फल प्राप्त हुआ, ऐसा विचार करके वह जिनधर्म में ज्यादा दृढ मनोबलवाली बनकर थोडी देर विश्राम करने बैठी ।

इस तरफ अंबिका की सासु अंबिका का तिरस्कार करके मुनिदान के कारण बचे हुए भोजन को जूठा मानकर नया भोजन पकाने के लिए भोजन से भरे बर्तनों को देखती है । जैसे ही उसने बर्तन खोले, तब जिस तरह पारसमणि के स्पर्श से पाषाण भी सुवर्णमय बन जाता है, उस तरह सुपात्रदान के महाप्रभाव से वे बर्तन भी सुवर्णमय और भोजन आदि से संपूर्ण भरे हुए देखे । बस ! उस समय अत्यन्त आश्चर्य के साथ विस्मय पायी हुई देवल सोचती है, ''अरे ! निरपराधी, साक्षात् कल्पलता जैसी, जंगम लक्ष्मी जैसी बहु को निर्भागी ऐसी मेरे द्वारा घर से बाहर निकाला गया ! मुझे धिक्कार हो !'' उस समय आकाशवाणी हुई कि ''अरे ! अभागिन ! अंबिका के सुपात्रदान का अंश मात्र ही तुम्हें दिखाया है, परन्तु प्रचंड पुण्यशाली ऐसी अंबिका का वैभव तो अद्‌भुत है । वह तो सुपात्रदान के फल स्वरूप देवों के इन्द्र द्वारा पूजन के योग्य ऐसे उत्तम स्थान को प्राप्त करेगी ।'' ऐसी दिव्य आकाशवाणी सुनकर भयभीत देवल जल्दी सोमभट्ट के पास दौडी और पूरी घटना बताकर अंबिका को ढूँढकर वापिस लाने के लिए भेजती है।

माता की बात सुनकर सोमभट्ट भी स्वयं की निंदा करता हुआ हृदय में अंबिका के प्रति अत्यन्त आदरभाव ग्रहण कर शीघ्रता से अंबिका को ढूँढने के लिए निकल पडा । सोमभट्ट नगर से बाहर निकलकर जंगल के मार्ग पर आगे बढ रहा था तब उसने दो बालकों के साथ अंबिका को देखा । हृदय में स्नेह के फुँआरे उछलने लगे और विरह की व्यथा के साथ अत्यन्त व्याकुल बना सोमभट्ट जोर से बोलने लगा, ''ओ अंबिका ! मेरी प्रिया ! जरा रूक जाओ ! मैं आ रहा हूँ !'' कर्म संयोग से सोमभट्ट के शब्दों को अस्पष्ट सुनकर, उसे अपनी तरफ तेजी से आते देखकर अंबिका भयभीत हो गयी । ''निश्चित यह मुझे मारने ही आ रहा है, इस जंगल में मेरे जैसी अबला का रक्षण कौन करेगा ? यह निर्दय एवं दुष्ट तो मुझ पर क्या-क्या अत्याचार करेगा पता नहीं, अब मैं यहाँ से बचने के लिए क्या करूँ ? मैं तो निराधार बन गयी हूँ । अब तो मरण ही मेरी शरण है ।'' इस तरह सोचती हुई नजदीक रहे हुए कुएँ के किनारे पर आकर अंदर कूदने में तत्पर बनी अंबिका-बोलती है, श्री अरिहंत भगवंत की मुझे शरण हो ! श्री सिद्ध भगवंत की मुझे शरण हो !

श्री साधु भगवंत की मुझे शरण हो !

श्री जिनप्रणीत धर्म की मुझे शरण हो !

द्विज, दरिद्री, कृपण, भील, म्लेच्छ कलंकी और अधमकुल में, उसी तरह अंग, बंग, कुरु, कच्छ और सिंधु आदि अनार्य देश में मेरा जन्म न हो !

याचकता, मूर्खता, अज्ञानता, कृपणता, मिथ्यात्व, सेनापतित्व, विष, अस्त्र तथा मद्यादिरस पदार्थों का व्यापार और प्राणियों की खरीदी-बिक्री मुझे भवांतर में कभी प्राप्त न हो !

इस मुनियुगल के सुपात्रदान के प्रभाव से देव-गुरु और धर्मरत्न को जाननेवाले, देव को पूजनेवाले, दातार, अधिकारी, धनाढ्य और हितअहित का विवेक करनेवाले ऐसे कुल में तथा सौराष्ट्र, मगध, कीर, काश्मीर और दक्षिण दिशा के देश में मेरा जन्म हो !

धनाढ्यता, उदारता, आरोग्यता और इन्द्रिय संपन्नता मुझे प्राप्त हो । इस तरह मनोरथों के मिनार पर आरोहण करते-करते अंबिका दोनों बालकों के साथ कुएँ में गिरी और तुरन्त मरकर अनेक ऋद्धिमान व्यंतर के समुह द्वारा सेवा योग्य व्यंतर जाति में देवी के रूप में उत्पन्न हुई । ''हे अंबिका ! हे प्रिया !'' इस तरह बोलता हुआ सोमभट्ट दौडकर कुएँ के किनारे पर आया। तब तक अंबिका दोनों बालकों के साथ कुएँ में गिरकर मर चुकी थी । अंबिका और दो बालकों को मृत अवस्था में देखकर सोमभट्ट विचार करता है कि ''मेरे जैसे मूर्ख को धिक्कार हो ! मैं कैसा दुष्ट हूँ ! साक्षात् लक्ष्मी समान पत्नी और राजकुमार समान दो पुत्रों को घर से निकाल दिया । इन तीनों की मृत्यु के बाद मेरे जीने का क्या अर्थ ? अब तो मुझे भी मृत्यु ही शरण है' ऐसा सोचकर सोमभट्ट भी अंबिका का ध्यान करते-करते कुएँ में गिरा । अंत समय में अंबिका का ही स्मरण होने के कारण सोमभट्ट पुण्यसंयोग से मरकर अंबिका देवी के वाहन रुप सिंह स्वरुपी देव बना ।

मंगलप्रभात के सूर्य जैसी सुवर्णकांतिवाले देह को धारण करनेवाली, जिसके देह की प्रभा समस्त देवलोक की दिशाओं में फैल गयी है, वनकेसरी सिंहवाहन पर आरूढ, सर्व अंगों से सुन्दर, बहुमूल्यवान मणिसुवर्ण-रत्न आदि आभूषणों से विभूषित, अनेक देव-देवीयों के द्वारा जिसकी-उपासना की जाती है, एक बालक गोद में और एक बालक पास में खडा है इस तरह दो बालकों से अलंकृत, चार भुजाधारी-जिन में दायें दोनों हाथों में पाश और बायें दोनों हाथों में आम्र की लुंब धारण करनेवाली प्रवीण वाणीवाली, ऐसी अचिन्त्य प्रभावशाली अंबिका देवी को एक देव ने पूछा, ''हे स्वामिनी ! पूर्वभव में आपने ऐसे कौन

से तप किए ? दान दिया ? तीर्थ भक्ति की ? या अन्य कोई सुकृत किए ? कि जिसके प्रभाव से आप इस व्यंतरलोक की दिव्य देवांगनाओं से भी पूजा योग्य हमारी स्वामीनी बनी हो ?'' इस तरह देव के वचन सुनकर अंबिका देवी ने अवधिज्ञान के उपयोग से अपना पूर्वभव जानकर सारा वृत्तांत बताया और जैनधर्म के महान उपकारों का स्मरण करते हुए आभियोगिक देवों द्वारा रचित देवविमान द्वारा सभी दिशाओं को प्रकाशित करती हुई रैवतगिरि में सहसावन के रमणीय स्थान में आयी ।

उस समय मयुर के मधुर केकारव और कोयल के टहुंकार से गूंजते हुए सहसावन के उद्यान में ''वेतस'' वृक्ष के नीचे अट्ठम तप सहित कायोत्सर्ग में स्थिर श्री नेमिप्रभु के सर्वधाती कर्म के बंधन टूटे । और आसोज वद अमावस (गुजराती भाद्रवा वद अमावस) की अंधेरी रात में चंद्र के चित्रा नक्षत्र के योग में श्री नेमिनाथ प्रभु को घनघाती कर्मो के अंधकार को भेदनेवाले केवलज्ञान की प्राप्ति हुई । स्व आचार के अनुसार करोडों देवताओं ने समवसरण की रचना की । १२० धनुष ऊँचे चैत्यवृक्ष के नीचे रचित सिंहासन पर प्रभु ''नमो तित्थस्स'' कहकर आरूढ हुए । अन्य तीन दिशाओं में व्यंतर देवों ने साक्षात् प्रभु की प्रतिकृति स्वरूप प्रभु के तीन बिंब स्थापित किए । समवसरण के रजत, सुवर्ण और रत्नमय तीन गढ में सर्व जीवों ने परमात्मा को वंदन कर यथायोग्य स्थान ग्रहण किया । साथ ही अंबिका देवी ने भी अपना स्थान ग्रहण किया । चतुर्विध संघ के साथ तिर्यंच जीव भी प्रभु की देशना सुनने के लिए उत्सुक बने ।

बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथ प्रभुने प्रथम देशना प्रारंभ की-

''धर्मो जगद्बन्धुरकारणेन, धर्मो जगद्वत्सल आर्तिहर्त्ता ।
क्षेमंकरोऽस्मिन् भुवनेऽपि धर्मो, धर्मस्ततो भक्तिभरेण सेव्यः ।''

जगत में धर्म कारण बिना का बंधु है, धर्म जगत् वत्सल है, धर्म पीडाओं का नाश करनेवाला है, इस भुवन में क्षेमंकर अर्थात् सबको संभालनेवाला है, इसी कारण से सब को अत्यन्त भक्तिपूर्वक धर्म का सेवन करने योग्य है ।''

''सम्यक्त्व धर्मरुपी कल्पवृक्ष का बीज है, धर्म का पालन करने के लिए यथाशक्ति उद्यम करना धर्म का स्कन्ध है । सुपात्रदान, अखंड शीलपालन, यथाशक्ति तपाचरण और शुभभाव ये धर्म की चार शाखाएँ हैं ।

सुवासना, कोमलता, अनुकंपा, आस्तिक्यादि धर्म वृक्ष के पत्ते हैं । सिद्धाचल, रैवताचलादि तीर्थसेवा, जिनपूजा, सद्गुरुसेवन और पंचपरमेष्ठि मंत्र पद ये धर्म वृक्ष की अग्रशाखा के पुष्पांकुर हैं । स्वर्गादि सुख धर्मवृक्ष के पुष्प हैं और मोक्ष सुख धर्मवृक्ष का फल है ।

इस तत्त्व को हृदयकमल में स्थापित कर जो जीव तथाभव्यत्वादि सामग्री की प्राप्ति के साथ अनंत भवभ्रमण में भटकानेवाली प्रमाद दशा का त्याग कर इस धर्मरूपी कल्पवृक्ष का सेवन करेंगे, वे जीव शीघ्र ही शाश्वत सुख के भोगी बनेंगे।''

श्री नेमिप्रभु की वैराग्य झरती अस्खलित देशना श्रवण से मानों अमृत पान किया हो वैसे सर्वपर्षदा परम संतोष को प्राप्त करती है। वरदत्तराजा वैराग्य प्राप्त कर स्वयं के हजार सेवकों सहित राजवैभव के साथ दीक्षा ग्रहण कर अठारह गणधरों में मुख्य गणधर् पद को प्राप्त करता हैं। यक्षिणी नामक राजकन्या प्रभु के पास दीक्षा ग्रहण कर अन्य साध्वियों में प्रवर्तिनी पद को प्राप्त करती है। दशार्ह, भोज, कृष्ण और बलभद्रादि मुख्य श्रावक बनते हैं और उनकी पत्नियाँ मुख्य श्राविका बनती हैं।

इस तरह चार गति रूप अंधकार में दीपक समान, दान-शील-तप-भाव इन चार प्रकार के धर्मरूप गृह की नींव के समान और मुक्तिरुपी वधु के हार समान श्री नेमिनाथ परमात्मा के चतुर्विध संघ की स्थापना हुई। प्रभु के मुख से अंबिका देवी के पूर्वभव, सद्वासना, सुपात्रदानादि योग्यता को सुनकर अतिभक्तिवाले इन्द्र महाराजा ने अन्य देवताओं के आग्रह से अंबिका देवी को श्री नेमिनाथ परमात्मा के शासन के विघ्नों को नाश करनेवाली अधिष्ठायिका देवी के रूप में स्थापित किया। गोमेध नामक यक्ष जो पूर्वभव में श्री नेमिनाथ प्रभु के वचन सुनकर प्रतिबोधित हुआ था, वह इन्द्र महाराजा की प्रार्थना से श्री नेमिनाथ परमात्मा के शासन में अंबिका देवी की तरह लोगों को मनोवांछित फल देनेवाला था, उसकी शासन के अधिष्ठायक देव के रुप में स्थापना की।

गोमेध यक्ष

भरतक्षेत्र की भव्यभूमि पर सुग्राम नामक सुहावना गाँव था। जहाँ गोमेध आदि अनेक प्रकार के यज्ञकांड क्रिया करानेवाला एक ब्राह्मण रहता था। मुख्यतः गोमेध आदि यज्ञ कराने में निपुण होने के कारण सभी ब्राह्मणों में वह गोमेध ब्राह्मण के नाम से प्रख्यात था। मिथ्यात्व के घोर अंधेरे के कारण वह धर्म के नाम पर, यज्ञ आदि क्रियाओं द्वारा अनेक प्राणीओं की हत्या में निमित्त बनता था। जीवहिंसा के भयंकर पापकर्म के तात्कालिक फल स्वरूप उसकी पत्नी और पुत्रों की मृत्यु हो गयी। पुत्र-पत्नी बिना निराधार बना ब्राह्मण अत्यंत उदास रहने लगा। आगे चलकर उसके शरीर में भयंकर कुष्ठरोग होने के कारण उसके प्रति जरा भी सहानुभूति बताये बगैर उसके स्वार्थी स्वजनों ने तिरस्कार करके उसे निकाल दिया। कुष्ठरोग की महापीडा से अत्यंत दुःखी अवस्था में वह जीवन व्यतीत कर रहा था। तभी अधूरे में पूरा, उस ब्राह्मण के शरीर के रोमरोम में असंख्य कीड़े पैदा होने के कारण वह प्रत्यक्षतः नरक की अत्यंत दुःखदायक पीडा भुगत रहा था। शरीर के एक-एक अंग में, बिलबिलाते कीडे और सतत निकलती रसी वगैरे अशुचि पदार्थों से उसके शरीर से तीव्र दुर्गन्ध फैलने लगी। दुर्गन्ध और अशुचि से व्याप्त उसके शरीर पर अनेक मक्खियाँ भिनभिनाने से वह अत्यंत वेदना का अनुभव कर रहा था। रोमरोम में अंगारो की जलन की वेदना सहन न होने से जल्दी से जल्दी मौत आ जाए ऐसी इच्छा के साथ भयंकर वेदनाओं को सहन करता हुआ, रास्ते में लोटता हुआ वह दुःख की चीख के साथ आक्रंद कर रहा था।

अच्छे कार्य के (सत्कार्य) बीज कभी न कभी तो फलते ही हैं। वैसे ही उसके पूर्वजन्म के कुछ अच्छे कार्यों का प्रचंड उदय होनेवाला हो वैसे, उस समय एक मुनिवर उस रास्ते से गुजरते हैं। क्षमाश्रमण, दया के भंडार ऐसे महात्मा ने उसकी अवदशा देखकर सहानुभूति बताकर कहा कि, ''हे भाग्यवान ! तूने कुगुरु के उपदेश के प्रभाव से धर्म की बुद्धि से अनेक जीवों की हिंसा करके जो कुकर्म किया है, उस पाप वृक्ष के ये तो अंकुर मात्र प्रकट हुए हैं। उस पापकर्म के फल तो तुझे अगले जन्म में प्राप्त होंगे। नरक आदि दुर्गति की परम्परा का यह प्रथम चरण हैं। अगर तू उस घोर भयंकर पीडा से थक गया है और अगले जन्मों में इस पीडा से दूर रहना चाहता है तो, अभी भी देर नहीं हुई हैं। तू जीवदया जिसके मूल में है ऐसे जीवदया पालक, करुणासागर, दया के भंडार श्री जिनेश्वर परमात्मा द्वारा स्थापित हुए जिनधर्म को स्वीकार कर। आज तक अनेक जीवों की हत्या करके, जीवों को पीडा दी है उनकी क्षमायाचना कर। तेरे किये हुए कुकर्म को नष्ट करने के लिए समर्थ, अनेक देवों

द्वारा पूजित अनंत तीर्थंकरों के अनंत कल्याणकों की भूमि ऐसी श्री रैवतगिरि महातीर्थ की सेवा-भक्ति कर । जिनके महाप्रभाव से तेरे सारे पाप नष्ट हो जायेंगे ।

निष्कारणबंधु ऐसे साधु भगवंत के सद्वचनों को सुनकर रैवतगिरि महातीर्थ को हृदय में बिठाकर गोमेध अमृतरस के आस्वादन को अनुभव करता हुआ, समता सागर में तल्लीन बनकर पीडारहित मृत्यु प्राप्त करता है । उपशम रस में डूबा हुआ, महातीर्थ और परमात्मा के ध्यान में मग्न बना गोमेध महाऋद्धिमान देव बनकर यक्षों का नायक बनता है । मुनिभगवंत के मुखकमल से निकले हुए अमृतवचन के सुनने मात्र से वह अनेकविध दिव्यदृष्टि का स्वामी बनता है । परमात्मा के असंख्य गुणों का स्तवन करने के लिए तीन मुँह को धारण करनेवाला, शासन के अनेक कार्यों को करने के लिए समर्थ ऐसे छ हाथों को धारण करनेवाला, जिसमें बायें तीन हाथों में शक्ति, शूल और नकुल तथा दायें तीन हाथों में चक्र, परशु और बीजोरा धारण करनेवाला, शरीर के उपर जनोई और वाहन के रूप में पुरुष को धारण करनेवाला गोमेध नामक यक्ष बनकर, शासन अधिष्ठायिका श्री अंबिका देवी की तरह और सेवकों से युक्त देवविमान में बैठकर, उसी समय रैवतगिरि महातीर्थ पर पहुँचकर परमात्मा को वंदन करता है । पूर्वजन्म में प्रभु के नामस्मरण मात्र से हुए उपकारों का स्मरण करते हुए गद्गद् स्वर में प्रभु की स्तवना करता है । उस समय इंद्र महाराजा भी उसे परमात्मा का भक्त समझकर श्री नेमिप्रभु के शासन के अधिष्ठायक देव रूप में स्थापित करते हैं।

गुणवंत गजपदकुंड

त्रण भुवननी सरितातणा, सुरभि प्रवाहने झीलतां,
जे जल फरसतां आधि-व्याधि, रोग सौना क्षय थतां,
जे जल थकी जिन अर्चतां, अजरामरपद पामतां,
ए गिरनारने वंदतां, पापो बधां दूरे जतां....

सृष्टि के शृंगार स्वरूप श्रीपुर नामक नगर में शौर्य और शूरवीरता की मूर्ति के समान पृथु नामक क्षत्रिय रहता था । उसकी रुपसुंदरी के अवतार समान चन्द्रमुखी पत्नी होते हुए भी जिस तरह चन्द्रमां में भी कलंक होता है उसी तरह कमनसीब के कारण अत्यन्त दुर्गंध से भरी हुई दुर्भागी ऐसी दुर्गंधा नामक पुत्री थी । पृथु अपनी पुत्री के योग्य पति की तलास में घूमता, परन्तु कोई उसका हाथ थामने के लिए तैयार नहीं था । कुछ समय के बाद सोमदेव नामक पुरुष के साथ उसका हस्तमिलाप हुआ, परन्तु दुर्गंधा के देह से सतत बहती हुई दुर्गंध से पीडित होकर सोमदेव रात के समय अत्यंत गुप्त रूप से उसका त्याग करके भाग जाता है ।

दुर्भागी दुर्गंधा पति से तिरस्कृत हुई । मातापिता और परिवारजनो से भी तिरस्कार पात्र बनी, चारों तरफ सतत तिरस्कृत बनी हुई दुर्गंधा अत्यन्त उद्विग्न बनी और अशुभकर्मों का क्षय करने के लिए स्वगृह का त्याग कर तीर्थयात्रा के लिए चल पडी। अनेक हिन्दु तीर्थों की स्पर्शना करने पर भी उसके कर्मों का बोझ हल्का न होने के कारण उसको जीने की इच्छा नहीं थी । मरण की शरण जाने के लिए वह समुद्र की तरफ निकली । जंगल के मार्ग से गुज़रते हुए एक तापस मुनि को देखकर वह नमस्कार करती है, तब वह मुनि भी तीव्रदुर्गंध से व्याप्त दुर्गंधा के प्रति दुर्भाव करता है और पराङ्मुख बनता है । तब दुर्गंधा खुद के प्रति तिरस्कार भाव से तापस मुनि को कहती है, ''महात्मा ! आप जैसे रागहीन तापस भी मुझसे विमुख होंगे तो मैं किसकी शरण स्वीकारुँ ? मेरे इन पापों की शुद्धि कैसे होगी ?'' तापस कहता है, ''हे बाला ! इस वन में मेरे गुरु कुलपति हैं । तुम उनके पास जाकर अपने दुःख की बात करो । वे तुम्हारी विडंबना का उपाय बतायेंगे ।''

तापस मुनि के शब्द सुनकर दुर्गंधा के शरीर में कुछ चेतना आयी । वह तापस मुनि के पीछे-पीछे कुलपति के आश्रम में जाती हैं ।

ऋषभदेव परमात्मा के ध्यान में लयलीन बने, जटारूपी मुकुट के धारक कुलपति के दूर से दर्शन होते ही दुर्गंधा के निस्तेज देह में नया जोश आ गया । कुलपति के समीप आकर दुर्गंधा जैसे ही नमस्कार करती है तब कुलपति भी क्षणभर के लिए उसके देह की दुर्गंध के प्रति दुर्भाव दर्शाकर पूछते हैं, ''हे वत्सा ! तेरे देह से ऐसी भयंकर दुर्गंध क्यों आ रही है ? इस घोर वन में दुःखी होकर क्यों घूम रही हो ? तुम यहाँ क्यों आयी हो ?'' कुलपति के आश्वासन भरे वचनों को सुनकर आँखों के आँसू पोंछते हुए दुर्गंधा जन्म से अपने दुःख की कथनी सुनाती है । जीवन से हारी हुई भाग्यहीन दुर्गंधा स्वदुःख निवारण के लिए कुलपति को उपाय बताने के लिए विनंती करती है । तब कुलपति कहते हैं, ''हे वत्सा ! मैं केवलज्ञानी नहीं हूँ कि तेरे पूर्व भवों के कर्मों को बता सकूँ । फिर भी तुम शत्रुंजय महातीर्थ की स्पर्शना करके रैवतगिरि तीर्थ की यात्रा करने जाओ । केवलीभगवंतों ने भी जिसकी महिमा बतायी है ऐसे गजेन्द्रपद कुंड के निर्मल जल से स्नान करने से तुम्हारे अशुभ कर्म नाश होंगे ।''

कुलपति के अमृत वचन सुनकर अत्यन्त हर्षित बनी दुर्गधा कुलपति के चरणकमलों को नमस्कार करती है । शत्रुंजय और गिरनार का स्मरण करते-करते वह सिद्धगिरि के सान्निध्य में आती है । गिरिराज को प्रदक्षिणा देकर युगादिजिन ऋषभदेव परमात्मा की सेवा भक्ति करके वह रैवतगिरि की तरफ प्रयाण करती है । रैवतगिरि की शीतल छाया में आकर उत्तरदिशा की तरफ के मार्ग से वह रैवताचल पर्वत पर आरोहण करती है । परन्तु अभी तक भारी कर्मी होने के कारण उसे गजपदकुंड में स्नान करने के लिए और जिनभवन में प्रवेश करने के लिए रोका जाता है । दुर्गंध के कारण वह प्रवेश प्राप्त करने में असमर्थ बनती है, तब गजपदकुंड से बाहर लाए हुए पवित्र जल से नित्य स्नान करने से सातवें दिन वह संपूर्णरूप से दुर्गंध से मुक्त हुई और सुगंधीपन को प्राप्त कर दुर्गंधा गजेन्द्रपद कुंड में स्नान करके खूब भक्तिभाव से जिनेश्वर परमात्मा की पूजा करने जाती है ।

रैवताचलमंडन श्री नेमिप्रभु की पूजा के सद्भाग्य से आनंदविभोर बनी दुर्गंधा जैसे ही बाहर निकलती है, उसे केवलीभगवंत का समागम होता है । पूर्व भव के वृत्तान्त को जानने के लिए उत्सुक बनी दुर्गंधा केवली भगवंत से अपने पूर्व भव की कथा पूछती है । तब केवली भगवंत कहते हैं, ''हे भद्रा ! तू पूर्वभव में ब्राह्मण कुल में जन्मी थी । अति शौचवाद के कारण तुमने श्वेताम्बर जैन साधु भगवंतों की मजाक की थी । हा ! हा ! ये श्वेतांबर साधु तो वन में घूमते हैं और स्नान शौच नहीं करते । ये दुर्गंध से भरे हुए हैं और अत्यन्त उज्ज्वल वस्त्रों को भी अपने देह के मैल से मलिन करते हैं । ऐसे वचनों से जैन श्वेतांबर

साधु भगवंत की निंदा-घृणा करने के पाप के उदय से तुम वहाँ से मरकर नरक में उत्पन्न हुई । वहाँ से मुर्गी, चांडाली, गाँव की सूअरी आदि अनेक दुर्गति के दुष्ट भवों में लम्बे समय तक भ्रमण कर अंत में बहुत कर्मो के क्षय होने से तुमने महामूल्यवान ऐसे इस मानव भव को प्राप्त किया है । परन्तु उसी कृत्य के शेष रहे थोडे कर्मों के प्रबल उदय होने से इस भव में भी तुमने इस दुर्गंधीपन और दुर्भागीपन को प्राप्त किया है । ''हे बाला ! इस जगत में सर्वोत्तम पुरुष, तीन लोक में पूजनीय ऐसे वीतराग परमात्मा सर्वश्रेष्ठ हैं, उनके वेशमात्र को भी धारण करनेवाले, निष्क्रिय ऐसे साधुभगवंत भी निंदनीय नहीं हैं, तो मिथ्यात्व का ध्वंस करनेवाले पंचमहाव्रत के धारक और पालक, अरिहंत परमात्मा के शासन को प्रकाशित करनेवाले ऐसे सुसंयमी श्रमण भगवंतो की निंदा करना कितना उचित है ? अरे ! इन महापूजनीय महामुनियों की निंदा-आशातना और मस्ती तो अनंत संसार के भवभ्रमण को बढानेवाली है । जो निस्पृही, निर्ममत्वी, निष्परिग्रही और निष्कारण बंधु, जीवमात्र को पीडा न पहुँचे, इसके लिए सतत जागृत ऐसी निर्दोष चर्या पूर्वक संयम जीवन की आराधना करनेवाले निर्ग्रंथ तो सर्वत्र पूजने योग्य हैं । निस्वार्थ भाव से सभी को दुर्गति में गिरने से बचानेवाले, ''धर्मलाभ'' शब्द के द्वारा अनेक जीवों की जीवन नैया के सच्चे नाविक, इन महामुनियों की निंदा कैसे की जाय ? हे दुर्गंधा ! इस तीर्थ के महान प्रभाव से आज तेरे अनेक जन्मों के अशुभ कर्मों का क्षय होने से तुम्हे सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई है । बोधि बीज का वपन हुआ है । बस ! अब इस तीर्थभक्ति रुपी जल से सतत सिंचन करने से तुम्हारे अनंत संसारभ्रमण का अंत होगा और तुम्हें मोक्ष फल की प्राप्ति होगी ।

केवली भगवंत के सुधारस का पान करके आनंदविभोर बनी धन्यता का अनुभव करती हुई दुर्गंधा का हृदय हर्ष से नाच उठा और वह मुनिवर के चरणकमल में नतमस्तक हो गयी ।

राजर्षि भीमसेन

इस जंबुद्वीप के भरतक्षेत्र में श्रावस्ती नाम की एक श्रेष्ठ नगरी थी । जहाँ जिनेश्वर परमात्मा की भक्ति में तत्पर, लोकहित के लिए व्रत धारण करनेवाले, सर्व गुणों से अलंकृत वज्रसेन नामक परम श्रावक राजा न्यायपूर्वक राज्य करते थे । उनकी अत्यंत शीलवान सुभद्रा नाम की पत्नी थी । जिनकी कुक्षी से भीमसेन नामक पुत्र ने जन्म लिया था । भीमसेन अत्यंत दुष्ट प्रकृतिवाला, जुआ आदि सात व्यसनों में चकचूर, अत्याचार करके निरपराधी लोगों को परेशान किया करता था । स्वभाव की विचित्रता और अनेक दोषों का भण्डार होने के कारण माता-पिता और गुरुजन हमेशा उसकी अवगणना करते थे ।

राजा वज्रसेन ने कुलक्षण वाले भीमसेन को युवराज पद पर स्थापित किया । सांप को दूध पिलाने के समान अब वह परस्त्री और परद्रव्यादि को चुराकर, सर्व प्रजाजनों को अत्यंत दुःख देता था । प्रजाजन उसके अन्याय से बहुत ही परेशान हो गये थे । अंत में भीमसेन के दुर्व्यवहार से परेशान होकर प्रजा ने इकट्ठा होकर महाराज को विनंती की, ''हे महाराजाधिराज ! हमें राजपुत्र के अपराधों को आपके समक्ष कहना नहीं चाहिये, परंतु उनके अत्याचार को हम ज्यादा सहन नहीं कर सकते । इसलिए आप कृपालु के समक्ष हम दया की झोली फैला रहे हैं । महाराज ! राजकुमार के दुष्ट व्यवहार से हम सब परेशान हो गये हैं अतः आप स्वामी को जो योग्य लगे वह करने की नम्र विनंती हम कर रहे हैं ।''

प्रजाजनों की विनंती सुनकर उनको आश्वासन देकर राजा ने बिदा किया । थोडी देर के बाद राजा भीमसेन को एकान्त में बुलाकर हितवचनों द्वारा समझातें हैं, कि ''हे पुत्र ! तू अन्याय का त्याग कर । न्याय पूर्वक प्रजा का पालन कर । प्रजा से ही राजा की शोभा है । प्रजा के बगैर राजा तो मात्र नाम का राजा है । न्यायधर्म में तत्पर ऐसे राजा को राजसंपत्ति की प्राप्ति होती है । शास्त्रों में भी कहा है कि, ''परस्त्री-परद्रव्य का हरण करना योग्य नहीं है । माता-पिता, गुरु और परमात्मा की भक्ति मुख्य कहलाती है । सर्वत्र न्याय करने योग्य है - और अन्याय तो दूर से ही त्याग करना चाहिए । स्ववचन का पालन, धीरज रखना, सातव्यसन का त्याग करना यही महाराज का प्रायः श्रेष्ठ धर्म है । जिसके पालन करने से यश, कीर्ति, लक्ष्मी और स्वर्ग की प्राप्ति होती है'' इस तरह समय-समय पर हितवचनों के द्वारा समझाने के बावजूद भी भीमसेन अधिकाधिक अन्याय करने लगा। राजा वज्रसेन ने हितशिक्षा द्वारा असाध्य भीमसेन को कारावास में डाल दिया । वहाँ भी कुमित्रों की झूठी शिक्षा से प्रेरित होकर एक दिन क्रोध में माता-पिता की हत्या करता है । पिताजी की मृत्यु के बाद स्वयं राजगद्दी पर बैठकर, कुसंगत के सहवास

से मद्यपान आदि व्यसनो में चकचूर बनकर सर्व प्रजाजनों पर अत्याचार करने लगा । भीमसेन के अत्याचार से थके हुए सर्व सामंत, मंत्री और परिवारजनों ने चर्चा विचारणा करके, यह पापी राजगद्दी के लायक नहीं है, यह मानकर कपटपूर्वक पकडकर जंगल में छोड दिया । सर्व शास्त्रों और न्याय में चतुर ऐसे सर्वजनसंमति से जयसेन नामक छोटे भाई का शुभ मुहूर्त में राजगद्दी पर बिठाकर राज्याभिषेक किया ।

इस तरफ देशनिकाल दिये जाने पर भीमसेन ने देशांतरों में घूमकर बुरे काम करना जारी रखा । जहाँ-तहाँ चोरी करना, अल्पद्रव्य के लिए भी मार्ग में आते-जाते लोगों को मारने की प्रवृत्ति जारी रखी । इस तरह अन्यायपूर्वक कमाये हुए धन से मद्यादि का सेवन करते हुए, कदम कदम पर घात, वध और बंधन वगेरे प्रहारों को सहन करते हुए, घूमते-घूमते मगधदेश के पृथ्वीपुर नगर में आ पहुँचा । नगर में किसी माली के यहाँ नोकर के रूप में रहा । वहाँ भी पत्र, फल और पुष्पादि की चोरी करके बेचने लगा । वहाँ से भी निकाल दिया तो किसी श्रेष्ठि की दुकान में नौकरी करने लगा । वहाँ भी अपने कुलक्षणों की वजह से दुकान में चोरी करते हुए पकड़ा गया । शेठजी ने निकाल दिया फिर भी किसी भी हालत में वह व्यसन छोडने के लिए तैयार नहीं था । श्रेष्ठि की दुकान से निकल कर ईश्वरदत्त नामक व्यापारी के यहाँ नौकरी करने लगा । व्यापारी व्यापार करने के लिए जहाज में अन्य देश में जा रहा था तब धन का लालची भीमसेन भी जहाज में चढ़ जाता है ।

एक महिने तक समुद्र की सफर करने के बाद एक रात परवाले के अंकुरो के बीच जहाज फंस जाता है । बहुत कोशिश के बावजूद भी जहाज हिलता नहीं है । दिन पर दिन गुजर रहे थे । जहाज में रहा हुआ खाने-पीने का सामान भी खत्म हो रहा था। उस वक्त चिंतातुर ईश्वरदत्त ने पंचपरमेष्ठि नमस्कार का स्मरण करके समुद्र में कूदकर मरने का निश्चय किया । तभी अचानक एक तोता वहाँ आकर बोलने लगा कि, ''हे श्रेष्ठि, आपको मरने की जरूरत नहीं है । आपको जीने का उपाय बताता हूँ । आप मुझे सिर्फ एक पक्षी मत समझो, मैं तो सामने दिख रहे पहाड का अधिष्ठायक देव हूँ । आपके प्रति दयाभाव के कारण मैं यहाँ आया हूँ। आपमें से कोई एक अगर समुद्र में कूदता है और तैरकर पर्वत के ऊपर रहे हुए भारंडपक्षी को उडायेगा तो उसके पंखों की पवन से आपका जहाज परवाले की पकड़ से छूट जायेगा और सब का जीवन बच जायेगा ।''

अधिष्ठायक देव रूपी तोते द्वारा बताये हुए उपाय को जहाज में घोषणा करता है कि, ''कोई एक व्यक्ति इस काम के लिए तैयार होगा तो अनेक लोगों का जीवन भयमुक्त हो जायेगा । कोई मरने के लिए तैयार नहीं हो रहा था तब धन का लालची भीमसेन, सौ दीनार पाने की इच्छा से तैयार हो गया । और तोते द्वारा बताए हुए उपाय से भारंडपक्षी को उड़ाया । जहाज उसके

पंखों की पवन से जहाज चलने लगा । भीमसेन ने अपना जीवन बचाने का उपाय पूछा तो तोते ने कहा, ''तू धीरज रख कर समुद्र में कुद पड ! वहाँ बडी मछलियाँ तुझे निगल जायेगीं, फिर किनारे पर आकर जोर से फूंक मारेगी तब तू यह दवा उनके गले में डाल देना । उसके प्रभाव से उनके गले में एक बडा छेद हो जायेगा । उस छेद में से निकलकर तूझे जहाँ जाना होगा, वहाँ जा सकेगा ।

तोते के इस उपाय को अपनाकर भीमसेन जीने की इच्छा के साथ सिहलतट पर पहुँचा । वहाँ भूख-प्यास से परेशान, जंगल में भटकता हुआ पानी पीकर और फल खाकर, किसी एक दिशा में निकल पडा । तभी रास्ते में एक त्रिदंडी साधु को देखकर प्रणाम किया । त्रिदंडी साधु ने आशीर्वाद देकर पूछा ''हे पुत्र ! तू कौन है ? इस जंगल में क्यों भटक रहा है ?'' इस संसार में जितने महादुःखी, सौभाग्यरहित और निर्भागी पुरुष हैं, उन सबमें स्वयं को पहेला माननेवाला अनेक दुःखों से पीडित भीमसेन ने तपस्वी महापुरुष के दर्शन होने पर उनको अपनी दुःखद कथा कही, ''अधिक तो क्या कहूँ ? मैं जहाँ, जिसके वहाँ जाता हूँ, वहाँ वह वस्तु सिद्ध नहीं होती । यदि मैं प्यासा बनकर समुद्र कें पास जाऊँ, तो भी जल नहीं मिलता । मैं इतना निर्भागी हूँ कि मेरे जाने से पेडों पर लगे फूल, सब नदियों का पानी और रोहणाचल के रत्न भी अदृश्य हो जाते हैं । मेरे भाई बहन, माता-पिता और पत्नी नहीं होते हुए भी मैं मेरा पेट नहीं भर सकता ।''

भीमसेन के दीनवचन सुनकर कपट में निपुण त्रिदंडी मुनि आँखों में बनावटी आँसू लाकर दुःखी स्वर में बोले, ''हे पुत्र ! तू दुःखी मत हो ! किसी अच्छे पुण्योदय की वजह से तू मेरी शरण में आया है, अब तेरा दारिद्र खत्म हो गया ऐसा समझ ! इस पृथ्वी पर हम परोपकार के लिए ही तो घूमते हैं । इसलिए तू मेरे साथ सिंहद्वीप चल ! वहाँ रत्नों की खान से रत्न ग्रहण करने से तेरे दुःखों का नाश हो जायेगा ।'' त्रिदंडी मुनि के कपटीवचनों पर विश्वास रखकर भीमसेन उनके साथ चल पडा । साथ में भोजन और सौ दीनार लेकर दोनों थोडे दिनों में रत्नों की खान तक पहुँच जाते हैं । कृष्ण पक्ष की चौदस की अंधेरी रात में त्रिदंडी मुनि भीमसेन को रत्नों की खान में उतारकर रत्न निकालने के लिए कहता है । रत्न मिलते ही दुष्ट त्रिदंडी मुनि रस्सी काट्कर भाग जाता है ।

भीमसेन खान में यहाँ-वहाँ घूमता हुआ, अत्यंत दुःखी और कृश शरीरवाले पुरुष को एक कोने में बैठा हुआ देखता है । वह पुरुष भी भीमसेन के प्रति दयाभाव बताते हुए पूछता है कि, ''हे भद्रपुरुष ! इस यमराज के मुँह में तू कहाँ से आया ? तू भी मेरे जैसे उस दुष्ट त्रिदंडी के द्वारा रत्न की लालच में खान में फेका गया है ?'' भीमसेन ने भी इस बात को स्वीकारा

और इस खान में से बाहर निकलने का उपाय पूछा । तब वह कहता है, ''कल सुबह इस खान में अधिष्ठायक रत्नचंद्र नामक देव की पूजा करने के लिए देवांगनाएँ आयेंगी । उस वक्त अनेक गीत गान और नृत्य के द्वारा रत्नचंद्र देव की पूजा करेंगे । जब गीतगान-संगीत और नृत्य क्रिया में देव मग्न हो जाए तब उनके सेवकों के साथ तू बाहर निकल जाना । बाहर आने के बाद देव तुझे कुछ भी कर नहीं सकेगा । यह बात सुनकर आनंदित भीमसेन ने उस महापुरुष के साथ बातचीत करके दिन बिताया। सुबह देवांगनाएँ रत्नचंद्र देव की पूजा-भक्ति करने के लिए दिव्यध्वनि और वाजिंत्रों के साथ विमान में बैठकर महोत्सवपूर्वक आगमन करती हैं । अधिष्ठायक रत्नचंद्र का चित्त गीत संगीत में मग्न होता है, तब मौका देखकर भीमसेन देव के सेवकों के साथ तत्काल खान में से बाहर निकल जाता है। धीरे-धीरे रास्ता काटता हुआ भीमसेन बहुत दिनों के बाद सिंहलद्वीप के मुख्य नगर क्षितिमंडनपुर में आता है । वहाँ किसी श्रेष्ठी के मालगृह में सेवक बनकर काम करता है । परंतु बचपन से चोरी के कुसंस्कारों की वजह से भीमसेन मालगृह में भी चोरी करना शुरु कर देता है ।

एक बार रक्षकों द्वारा चोरी के समाचार मिलने पर भीमसेन को बाँधकर नगर में, ''यह चोर है'' इस जाहेरात के साथ गली-गली में घुमाकर, फाँसी देने के लिए लाते हैं, तभी उसने पहले किये हुए प्रचंड पुण्योदय के कारण उस वक्त व्यापार के लिए निकले हुए ईश्वरदत्त उधर से गुजरते हैं । उनकी नजर भीमसेन पर गिरती है, तब उनको समुद्र में फँसे हुए जहाज को बाहर निकालने के लिए मददगार बने हुए भीमसेन के उपकार का स्मरण होता है । उपकारों की ऋणमुक्ति के लिए राजा को विनंती करके भीमसेन को छुडवाते हैं। और उनको अपने साथ जहाज में बिठाकर पृथ्वीपुरनगर ले आते हैं। एकबार एक परदेशी को बात-बात में भीमसेन खुद के दुःख की कहानी सुनाता है । तब वह कहता है कि, ''तू दुःखी मत हो ! मेरे साथ चल ! हम दोनों रोहणाचल में रत्न की खोज के लिए जायें ।'' दोनों रोहणाचल की तरफ जाने के लिए निकल पडते हैं । तब मार्ग में एक तापस के आश्रम में जटिल नामक वृद्ध तापस को देखकर नमस्कार करते हैं और उनके चरणों में बैठ जाते हैं । उस दौरान जटिल तापस का जांगल नामक शिष्य आकाशमार्ग से नीचे उतरता है । उसके गुरु जटिल तापस को पंचांग प्रणिपात पूर्वक नमस्कार करके उनके चरणों में बैठ जाता है । बहुत दिनों से आये हुए शिष्य जांगल को जटिल तापस कहते हैं कि, ''हे पुत्र ! अभी तू कहाँ से आ रहा है ? इतने दिनों तक कहाँ था ?'' जांगल कहता है, ''स्वामी ! अभी मैं सोरठदेश के श्री शत्रुंजय-गिरनार की यात्रा करके सीधा यहाँ आया हूँ। उन दो तीर्थों की संपूर्ण महिमा का वर्णन करने के लिए कौन समर्थ बन सकता है ? केवलज्ञानी केवलज्ञान के द्वारा उस महिमा को जान सकते हैं, परंतु वर्णन करने के लिए तो वे भी समर्थ नहीं

है । उसमें भी रैवतगिरि की महिमा तो मैंने सुनी और साक्षात् देखी भी है । इस तीर्थ की सेवा करके जीवों को सुख-संपत्ति, चक्री और शक्रादि की रिद्धि-सिद्धि भी प्राप्त होती है और वे अल्पकाल में मुक्तिपद को प्राप्त करते हैं ।

इस तरह जांगल तापस के मुँह से रैवतगिरि महातीर्थ की अचिन्त्य महिमा सुनकर तापस मुनि बहुत ही आनंदित हुए। भीमसेन और परदेशी भी इस महिमा को सुनकर आश्चर्यचकित हुए और उन्होंने पहले रोहणाचल पर जाकर फिर रैवतगिरि की यात्रा करने का निश्चय किया । रास्ते में अनेक गाँव नगर और जंगल से गुजरते हुए वे रोहणाचल के पास आ गए । विधिपूर्वक पर्वत के अधिष्ठायक देवों की पूजा-अर्चना करके भीमसेन खान में से रत्न निकालने की आज्ञा पाता है । पुरी रात जागरण करके मंगलकारी सुबह में रत्नखान में शस्त्रों से प्रहार करके महामूल्यवान ऐसे दो कीमती रत्न भीमसेन प्राप्त करता है । इन दो रत्नों में से एक राजकुल में समर्पित करके, दूसरा रत्न लेकर, जहाज में बैठकर दूसरी जगह जाने के लिए निकलते हैं । समुद्रयात्रा के दौरान पूनम के दिन, सोलह कला से खिले हुए पूर्णचंद्र के दर्शन करते हुए भीमसेन ने सोचा कि इस चंद्रमा का तेज ज्यादा होगा या इस रत्न का ? दोनों की तुलना करने के लिए भीमसेन ने रत्न बाहर निकाला । लेकीन शायद अभी तक अशुभ कर्मों की परंपरा चालु ही थी । भवितव्यतावश उसके हाथों से वह रत्न समुद्र में गिर गया । कहते हैं ना कि, ''भाग्य से ज्यादा किसी को नहीं मिलता और भाग्य में हो तो, कहीं जाता नहीं ।'' भाग्यहीन भीमसेन के मुँह से करुणाभरे स्वर निकले और कर्म के एक और झटके से वह बेहोश हो गया । थोडे समय के बाद ठंडे पानी के छिंटकाव से पुनः होश में आते ही भीमसेन जोरजोर से विलाप करने लगा । जहाज के सहप्रवासी भी उसका विलाप सुनकर इकट्ठे हुए । तब ''मेरा रत्न समुद्र में गिर गया, मेरा रत्न समुद्र में गिर गया । मैं लूट गया, मैं लूट गया । ऐसे दीनता भरे वचन वह बोलने लगा । सहयात्रियों ने उसे आश्वासन द्वारा शांत करने का प्रयास किया । फिर भी भीमसेन शांत नहीं हुआ । तभी उसके मित्र परदेशी ने धैर्य धारण करने की सलाह दी । और शोकमुक्त होने के लिए कहा, ''अगर हम जिंदा रहें, तो मैं तुम्हें दूसरे और रत्न दिला दुँगा । तू खेद मत कर। अभी हम दरिद्रों के दुःख दूर करनेवाले, संकट को टालनेवाले महाप्रभावक ऐसे रैवताचल की तरफ जा रहे हैं । वहाँ तेरी इच्छापूर्ति हो जायेगी अथवा ये मेरे रत्न तू रख ले ।'' ऐसे आश्वासन भरे शब्दों से भीमसेन को शांत किया ।

भीमसेन के कुछ धीरज धारण करने के बाद समुद्र मार्ग काटकर दोनों रैवतगिरि महातीर्थ की तरफ आगे बढ़े । हाथ धोकर पीछे पड़ा हो वैसे कर्मराज भी कोई भी हालत में पीछा छोड़ता नहीं । रैवतगिरि तरफ के मार्ग में आगे बढ़ते हुए दोनों को चोर लूँट लेते हैं और वस्त्र-भोजन आदि सब कुछ लूट लेते हैं । सबकुछ लूट जाने से दोनों अनेक दुःखों को सहन करते

हुए आगे बढ़ते हैं । वहाँ मार्ग में एक मुनि भगवंत मिलते हैं । उनके दर्शन से हृदय में आनंद की एक लहर उमड़ी । नमस्कार करके दीनतापूर्वक अपने सब दुखों की कहानी बताते हुए भीमसेन कहता है कि, ''स्वामि ! दुर्भाग्य और दरिद्रता में शिरोमणि, सर्व लोगों की निंदा के पात्र, सर्वत्र अनादर और तिरस्कार के दुःखों से दुःखी ऐसे हमें, इस दुःखनाश का कोई उपाय बताने की कृपा करें । अन्यथा पर्वत पर से कूदकर मौत को गले लगायें, यही श्रेष्ठ उपाय है जो हमें दिख रहा है ।

करुणा के सागर, दया के भंडार ऐसे मुनिवर ने उनको सांत्वना देते हुए कहा कि, 'ओ ! युवानो ! आप लोगों ने पूर्वभव में कुछ धर्म की आराधना की ही नहीं थी, इसलिए इतने दुःखी दिख रहे हो । शास्त्र में कहा है कि-

कुले जन्म य नैरुज्यं सौभाग्यं सुखमद्भुतम् ।
लक्ष्मीरायुर्यशो विद्या हृदयारामस्तु रंगमाः ॥१॥

मातंगा जनलक्षैस्तु परिचर्या तथार्यता ।
चक्रिशक्रेश्वरत्वं च धर्मादेव हि देहिनाम् ॥२॥

जीवों को अच्छे कुल में जन्म, निरोगी शरीर, सौभाग्य, अद्भुत सुख, लक्ष्मी, दीर्घायुष्य, यश, विद्या, सुख संपत्ति, हाथी, घोडें और लाखों लोगों द्वारा सेवा, आर्यत्व, चक्रीत्व तथा इंद्रत्व धर्म से ही प्राप्त होते हैं ।

इसलिए हे भीमसेन ! अनर्थ की परंपराजनक आर्त ध्यान मत कर । तेरे द्वारा पूर्वभव में अठारह मिनट तक मुनि को पीड़ा दी गई थी । सज्जन पुरुषों को मुनिभगवंत की बाह्य-अभ्यंतर सेवा भक्ति द्वारा आराधना करनी चाहिये । विराधना होनी नहीं चाहिये । आराधना करने से कष्टनाश होते हैं और विराधना करने से कष्ट प्राप्त होते हैं । उसके प्रताप से आज तक इतने वर्षों से तू सतत दुःखी हो रहा था । अब रैवतगिरि महातीर्थ की सेवा-भक्ति करने से तेरे सब-शेष कर्म भी नाश हो जायेंगे और तू सर्व संपत्ति का स्वामी बनेगा । समग्र पृथ्वी को जिनालयों से सुशोभित करके अंत में मुक्तिपद प्राप्त करेगा । इसलिए तू जरा भी चिंता किये बगैर श्रद्धा-भक्ति और भावोल्लास के साथ रैवतगिरि की तरफ प्रयाण कर ।''

मुनिभगवंत के ऐसे अमृतवचनों को सुनकर भीमसेन उत्साहपूर्वक रैवतगिरि महातीर्थ की ओर बढा । वहाँ घोर तपश्चर्या करता है, शरीर का मोह छोड देता है । रैवतगिरि के प्रचंड प्रभाव का पहला अनुभव करता हुआ भीमसेन, संघ के साथ संघपति बनकर आये हुए, अपने छोटे भाई जयसेन राजा को, जिनालय में प्रदक्षिणा देते हुए देखता है । महाराज, राजमंत्री तथा राज्य

के लोग भी भीमसेन को पहचान जाते हैं । प्रदक्षिणा की विधि पूरी होते ही जयसेन राजा भावविभोर होकर आनंद से भीमसेन के गले लगते हैं । आनंदाश्रु से भरी आँखोंवाले जयसेन राजा विनम्रता से कहते है कि, ''ओ ! बडे भाई ! ऐसी कोई जगह बाकी नहीं रही, जहाँ मैंने आपको ढूँढा न हो । आपकी खोज में गाँव-गाँव अनेक सेवकों को महीनो तक दौडाया फिर भी आपका कोई पता नहीं चला । भाई ! इतने सालों तक आप कहाँ रह गये थे ? पधारिये । इतने वर्षों से अमानत की तरह संभाले हुए इस राज्य का स्वीकार करें । छोटे भाइ के अतिआग्रह बश होकर, भीमसेन भी उनके हृदय की भावनाओं को समझकर, मंत्रीगण सहित स्वराज्य को अपनाने की संमति देता है । हृदय में उछलती हुई आनंद की लहरों के साथ महाराजा भीमसेन, जयसेन, मंत्रीगण और प्रजा इस महातीर्थ की पूजा स्नात्रादि विधि संपन्न कर अपने राज्य की तरफ प्रयाण करते हैं ।

मार्ग में अनेक राजाओं से पूजित, अपने बडे भाई भीमसेन को, जयसेन द्वारा बहुत ही ठाठमाठ से महोत्सवपूर्वक प्रवेश कराया गया । संपूर्ण नगरजनों के हृदय में आज आनंद समा नहीं रहा था । सब लोग नगर के रास्तो पर रंगोली, नृत्य-गीत आदि अनेक प्रकार से, नूतन महाराज को बधाई देने के लिए इकट्ठे हुए थे । महाराजा भीमसेन पहले के सर्व व्यसनादि कुलक्षणों से मुक्त बनकर, राज्य के सुव्यवस्थित कार्यभार के लिए अपने छोटे भाई जयसेन को युवराज पद पर, परदेशी मित्र को कोशाधिपति पद पर स्थापित करता है । मंत्रीमंडल के सहयोग से पिताजी की तरह न्याय पूर्वक प्रजा का पालन करने में तत्पर रहता था। महाराजा भीमसेन के राजगद्दी पर बिराजमान होने के बाद उनके राज्य में ना कोई चोर का डर रहा, ना कोई प्रजा की तकलीफ रही, ना कोई अतिवृष्टि, ना कोइ अनावृष्टि, ना स्वशत्रुसैन्य की तकलीफ, ना कोई अकाल-अशिवादि उपद्रव रहा । पूर्व अवस्था में आवेश में की हुई माता-पिता की हत्या का पाप उसको चुभ रहा था । इस कारण से उसे भविष्य की चिंता होती थी। इसलिए किये गए पापो से मुक्ति पाने के लिए गाँव-गाँव, जगह-जगह जिनेश्वर परमात्मा के जिनालयों का निर्माण करने का संकल्प किया। पृथ्वीतल की भूमि को जिनालयों से सुशोभित करने का प्रयास किया । देवगुरु तथा साधर्मिक भक्ति में परायण, दीन बंधुओं के प्रति दयालु, परोपकार व्यसनी ऐसा भीमसेन राजा धर्म-अर्थ-काम को अबाधक बनकर अच्छी तरह से राज्य का पालन करने लगा ।

समय बीतता गया । उसमें एक दिन जिनेश्वर परमात्मा की भक्ति में तत्पर ऐसे एक विद्याधर को अपने बगीचें में आया हुआ देखकर राजा भीमसेन ने पूछा कि, ''हे भद्रपुरुष ! आप कहाँ से आये हैं ? विद्याधर कहता है, ''महाराज ! तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजयगिरि तथा महाप्रभावक उज्जयंत महागिरि की यात्रा करके मैं यहाँ जिनेश्वर परमात्मा की भक्ति करने आया हूँ ।

विद्याधर के शब्दों से महाराजा भीमसेन को याद आया कि, ''अहो ! धिक्कार है मुझे ! जिस रैवतगिरि महातीर्थ के अचिन्त्य प्रभाव से मैं आज इतने सुखों का स्वामी बना हूँ, उसको मैं याद भी नही करता । दुबारा उस महातीर्थ की यात्रा करने का विचार भी नहीं किया'' । उपकारी के उपकार का विस्मरण होने की भूल के एहसास से शोकमग्न भीमसेन राजा वैराग्य पाता है । अपने राज्य का संपूर्ण भार अपने छोटे भाई जयसेन को सौंप देता है, और थोड़े सेवकों के साथ रैवतगिरि की तरफ प्रयाण करता है । सबसे पहले सिद्धगिरि महातीर्थ पर युगादिजिन की पूजा-भक्ति के साथ अट्ठाई महोत्सव करके रैवतगिरि तीर्थ पर जाता है । वहाँ कपुर, केसर, चंदन, नंदनवन में खिले हुए विविध फुलों से श्री नेमिनाथ परमात्मा की पूजा-भक्ति करता है। विविध उत्सवपूर्वक परमात्मा की भक्ति करता है । अनुक्रम से दान, शील, तप, भावरूपी चर्तुविध धर्म की उत्कृष्ट आराधना करता है ।

थोडे समय के पश्चात् ज्ञानचंद्र मुनि के आगमन से, उनकी सुमधुर धर्मवाणी के श्रवण से, संसार के प्रति विरक्त चित्तवाला राजा भीमसेन दीक्षा ग्रहण करता है । संयमधर्म की साधना में मग्न हुए राजर्षि भीमसेन ज्ञानशिला में दुष्कर तप की आराधना करते हैं । पूर्वकाल में किये हुए पापकर्म को तप की अग्नि द्वारा नष्ट किया । ऐसे राजा भीमसेन को इस रैवतगिरि महातीर्थ के प्रचंड प्रभाव से आठवें दिन केवलज्ञान प्राप्त होता है और थोडे समय में आयुष्य पूरा करके शिवपद के स्वामी बनते हैं ।

इस महातीर्थ के प्रभाव से महापापी, महादुष्ट ऐसे कुष्ठरोगी भी मोक्षपद के स्वामी बनते हैं । इस तीर्थ पर किये हुए थोडे से दान का भी खूब फल है । वह दान अतिवृद्धि प्राप्त करके मुक्तिरूपी स्त्री के साथ संगम कराता है । इस तरह इस तीर्थ पर अनेक मुनिवरों ने अपने अशुभ कर्मों को नष्ट कर शाश्वत-पद को प्राप्त किया है ।

अशोकचन्द्र

जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में चंपापुरी नामक छोटीसी परंतु अत्यंत मनोहर नगरी में पूर्वकृत अशुभकर्मों के तीव्रोदय से दीर्घकालीन दरिद्रता के दर्द से शोकातुर ऐसा अशोकचन्द्र नामक क्षत्रिय पुरुष रहता था । निर्धनता की करुण व्यथा से अत्यंत थका हुआ वह सतत उद्वेग अनुभव करता हुआ गृह त्यागकर, एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटक रहा था ।

अनादिकाल के अशुभकर्म के घनघोर बादलो के अंधकार को भेदनेवाले तेजस्वी प्रकाश का जैसे आगमन हो रहा हो, वैसे ही मार्ग में तप के ताप से तपायी हुई, कंचनवर्णी काया को धारण किए हुए एक मुनिवर का मिलन हुआ । महात्मा के दर्शन होते ही अशोकचन्द्र हाथ जोड़कर नमस्कार करके, उन महात्मा को बहुत ही नम्रभाव से अपनी दरिद्रता को नाश करने का उपाय पूछता है । तब महात्मा कहते हैं कि 'हे वत्स ! शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा इस भवसंसार में भ्रमण करने के लिए असमर्थ होते हुए भी पूर्वजन्म में उपार्जित किए हुए प्रबल कर्मों के आधीन बनी हुई आत्मा सुखदुःख का अनुभव करती है। उसी तरह तेरे पूर्वभवों के किए हुए दुष्कृतों के फलस्वरूप ही तेरी यह दरिद्रता ज्ञात होती है । इसलिए अन्य सैंकडो उपायों को छोड़कर एकमात्र रैवतगिरि महातीर्थ की सेवाभक्ति करने में आए तो अत्यंत अल्पकाल में अनेक भवों के अशुभकर्मों का चूरा हो जाता है ।

महासंयमी के सुधारस का आस्वादन करके तृप्त बना हुआ अशोकचन्द्र रैवतगिरि महातीर्थ की ओर प्रयाण करता है । महातीर्थ के दर्शन के मनोरथ के साथ एक-एक कदम पर अनेक जन्मों के अशुभ कर्मों का क्षय करते हुए अशोकचन्द्र महातीर्थ के परमसान्निध्य में आता है ।

''रैवतगिरि समरुं सदा, सोरठ देश मोझार
मानवभव पामी करी, ध्यावुं वारंवार....,
आ तीर्थपर जे भावथी, अल्प पण धर्मने करे,
आ लोकथी परलोक वली, परमलोकने ते वरे,
जे तीर्थनी सेवा थकी, फेरा जन्मोना टले,
अे गिरनारने वंदतां, पापों बधा दूरे जता....''

महातीर्थ के ऐसे प्रभाव को मुनिवर के मुखकमल से सुनकर अशोकचन्द्र तो रैवतगिरि के उच्च शिखर पर लौ लगाकर स्थिर चित्त से तपयज्ञ की घोर साधना की शुरुआत करता है । तपयज्ञ के प्रभाव से प्रभावित गिरनार महातीर्थ की अधिष्ठायिका अंबिका देवी प्रसन्न हुई । जिसके स्पर्शमात्र से लोह भी सुवर्ण बन जाता है वैसा दरिद्रता दूर करने का पारसमणि अशोकचन्द्र को देती है । पारसमणि के प्रगट प्रभाव से अपार संपत्ति का स्वामी बना अशोकचन्द्र अपने सुदृढ सैन्यबल के प्रताप से राज्य की प्राप्ति करता है । पूर्वकृत अशुभकर्मों के आवरण को दूर करके अशोकचन्द्र के शुभकर्मों का सूर्य मध्याह्न में चढने लगा । संपत्ति के प्रताप से प्राप्त भोगविलास की सामग्री में चकचूर बना अशोकचन्द्र एकदिन अचानक विचारधारा में चढ़ता है कि रैवतगिरि महातीर्थ और शासन अधिष्ठायिक अंबिकादेवी के पुण्यप्रसाद से आज इस राजवैभवादि सामग्री की प्राप्ति होने से भोगसुख के विषयराग में आसक्त बना हुआ मैं उस उपकारी का स्मरण भी नहीं करता ? धिक्कार हो मुझे ! मैं कैसा कृतघ्न बना !

पश्चात्ताप के निर्मल झरने में स्नान करता हुआ अशोकचन्द्र अपनी समस्त रिद्धि-सिद्धि के साथ ठाठमाठ से संघ और स्वजनों से घिरा हुआ, मार्ग में जगह-जगह अनेक गाँवों में सेवाभक्ति, अनुकंपा, स्वामिवात्सल्य, जीर्ण जिनालयों का जीर्णोद्धार कार्य आदि अनेकविध सुकृत करते करते प्रथम तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय महातीर्थ की यात्रा करके अनंत तीर्थंकरों की सिद्धभूमी ऐसे रैवतगिरि महातीर्थ की यात्रा के लिए जाता हैं । गिरि आरोहण करके महाप्रभावक ऐसे गजपदादि कुंड के पवित्र जल से श्री नेमिप्रभु की स्नात्रादि विधि सहित भक्ति करने के पश्चात् शासन अधिष्ठायिका अंबिकादेवी की पुष्पादि पूजा करके वैराग्यवासित अशोकचन्द्र विचार करता है कि अरे ! इस रैवतगिरि महातीर्थ के महाप्रभाव से मैं पिछले ३०० वर्षो से अनेक प्रकार की रिद्धि-सिद्धि और राजवैभव के साथ राज्य भोग रहा हूँ । बस ! अनेक भवों के दुःखों की परम्परा को बढाने वाले समुद्र के तरंगों की तरह चंचल इन भौतिक सुखों को भोगकर अब मैं थक गया हूँ । अब तो मुझे अविनाशी ऐसे मोक्ष सुख को प्राप्त करना है । ऐसी चिंतन श्रेणी में चढता हुआ अशोकचन्द्र अपने पुत्र को राज्य सौंपकर श्री नेमिनाथ परमात्मा की शरण ग्रहण करके संयम की साधना में लग जाता है । अनेक प्रकार की आराधना के द्वारा अनेक भवों के कर्मों का क्षय करने के लिए रैवतगिरि के परम सान्निध्य में रहने लगा और तपाग्नि के द्वार सर्व कर्ममल को तपाकर शुभध्यान की उज्ज्वल ज्वाला में सर्वघाती कर्मों को भस्मीभूत करके कैवल्य लक्ष्मी की प्राप्ति करता है । उसी समय शेष सर्वअघाती कर्मों का भी नाश करके रैवतगिरिराज की मनमोहक भूमि पर मोक्ष पद को प्राप्त करता है ।

श्री रैवतगिरि महातीर्थ की सेवा-भक्ति के द्वारा मनुष्य इस जन्म में सकल संपत्ति प्राप्त करता है, परभव में सद्गति और

अंत में परमगति को प्राप्त करता है । अरे ! पापी से पापी जीव भी इस तीर्थ के प्रभाव से पाप मुक्त बनता है ।

इस तीर्थ की महिमा अपरंपरा है, इसीलिए कहा है कि –

> ''आ तीर्थभूमिए पक्षिओंनी, छाया पण आवी पडे,
> भवभ्रमण केरा दुर्गतिना, बंधनो तेनां टळे,
> महादुष्टने वळी कुष्टरोगी, सर्वसुख भाजन बने,
> ए गिरनारने वंदता, पापो बधां दूरे जतां....''

सिद्धिदायक रैवतगिरि

सोरठ देश के सुग्रामपुर गाँव में पूर्व कर्मों के तीव्र उदय के कारण अनेक दोषों के भंडार स्वरूप एक क्षत्रिय रहता था। कोई भी प्रकार के व्रत नियम बिना उसका जीवन स्वच्छंदता और स्वतंत्रता की पराकाष्ठा पर पहुँचा था । उसके दिल में जीवमात्र के प्रति करुणा न होने के कारण वह अनेक जीवों की निर्दयता से हत्या करता था । राजा हरिश्चन्द्र का कट्टर दुश्मन हो उस तरह उसे सत्य के साथ महाभयंकर वैर होने के कारण वह हमेशा कूड-कपट और मिथ्यावचनों को बोलता । अनेक प्रकार के दोषों से भरा हुआ वह मार्ग के पथिकों को पीडा पहुँचाकर आनंदित होता था । इस तरह हत्या और महापापकारी प्रवृत्ति के महापापोदय के कारण उसका शरीर लून नामक रोग से व्याप्त हो गया । इस महारोग की अत्यन्त भयङ्कर पीडा को सहन करता हुआ वह एक गाँव से दूसरे गाँव, एक नगर से दूसरे नगर में दीन बनकर भटक रहा था ।

पूर्वभव के कोई प्रचंड पुण्योदय से एक जैनमुनि का संपर्क हुआ, उन्हें अपनी दुःखभरी कहानी सुनाकर वह आत्मसमाधि के उपाय की माँग करता हुआ मुनिभगवंत के समक्ष झोली फैलाता है । निष्कारण बंधु मुनिवर श्री रैवतगिरि महातीर्थ के माहात्म्य का अद्भुत वर्णन करते हैं । वह तीर्थ के प्रभाव का अनुभव प्राप्त करने के लिए रैवताचल महातीर्थ की यात्रा के लिए प्रयाण करता है । थोडे ही समय में वह रैवतगिरि के पास पहुँचकर गिरि आरोहण करता है । वहाँ पर श्री नेमिप्रभु के दर्शन से नेत्रों को पावन करके खूब भावपूर्वक प्रभु की पूजा-भक्ति तथा उज्जयन्ती नदी के निर्मल जल से स्नान करता है । द्रव्य और भाव सर्व रोगों का नाश होते ही वह समाधिपूर्वक मृत्यु पाकर सूर्यमंडल समान देहकांतिवाला, दशों दिशाओं को प्रकाशित करनेवाला अद्भूत रूपवान देव बनता है ।

दैवीसुख के उपभोग में पूर्वभव को भूलचुके उस देव को अचानक परमात्मा और तीर्थ के परम उपकार का स्मरण होता है । पूर्वभव में भरत चक्रवर्ती के द्वारा निर्मित नेमिप्रसाद में पूजाभक्ति करने से पापों की परम्परा का नाश होता है और रैवतगिरि महातीर्थ के प्रचंडप्रभाव से दिव्यकांतिवाला देव बनता है । उन उपकारों का अंशात्मक ऋण चुकाने की भावना से वह पुनः रैवतगिरि की स्पर्शना-भक्ति करने जाता है, और जिनालय का निर्माण करता है । जिसके अचिन्त्य प्रभाव से मुझे इस सिद्धि की प्राप्ति हुई है उसका यदि मैं आश्रय न करुँ तो स्वामीद्रोह के भयंकर पाप के परिणाम स्वरूप दुर्गति में पतन होगा । इस तीर्थ की और परमात्मा की भक्ति से मुझे आगामी भव में आनंददायक केवलज्ञान और परमपद की प्राप्ति होगी, इसीलिए इस तीर्थ को ही मैं अपना आश्रय स्थान बनाऊँ, ऐसा विचार करके वह रैवतगिरि तीर्थ में सिद्धिविनायक नामक अधिष्ठायक बनकर श्री नेमिनाथ परमात्मा के भक्तजनों के सभी वांछित कार्यों को पूर्ण करने के लिए सज्ज बन जाता है ।

सौभाग्य मंजरी

भरतक्षेत्र के दक्षिण पथ में कर्नाटक नामक देश था । वहाँ अनेक प्रकार के राजवैभववाला चक्रपाणी राजा था । उसे सभी को प्रिय, रुपवान आदि अनेक गुणो से उज्ज्वल ऐसी प्रियंगुमंजरी नामक पत्नी थी । दिन प्रतिदिन भोगविलासादि राजसुखों को भोगते-भोगते प्रियंगुमंजरी रानी की कुक्षी से पुत्री का जन्म हुआ । जन्म से ही वह सर्वांगसुन्दर होते हुए भी अशुभ कर्म के प्रभाव से उसका मुख बंदरी के जैसा था । राजा भी इस घटना से अत्यन्त विस्मित हुआ और कोई अमंगल की शंका से उसके उपशम के लिए जगह-जगह देवी-देवताओं की पूजा, स्नात्र महोत्सव आदि अनेक शांतिकर्म के अनुष्ठान करवाता है । मुख से कुरूप परन्तु सौभाग्य में सुंदर ऐसी उस राजकुमारी का सौभाग्यमंजरी नाम रखा गया । वह चौसठ कलाओं में निपुण बनी ।

एकबार राजदरबार में सौभाग्यमंजरी महाराजा की गोद मैं बैठी थी । उस समय कोई परदेशी पुरुष राजदरबार में प्रवेश करता है, और महाराजा के समक्ष तीर्थाधिराज श्री पुंडरिकगिरि की महिमा बताकर संसारतारक और पुण्य के कारक ऐसे रैवतगिरि महातीर्थ का माहात्म्य प्रारंभ करते हुए कहता है कि, महाराज ! इस अवनीतल पर पुण्य का संचय और दुःख-दरिद्रता का नाश करनेवाला रैवताचल पर्वत जय को प्राप्त हो रहा है । इस गिरिवर के पवित्र शिखर, नदी, झरने, धातु और वृक्ष सभी जीवों को सुख देनेवाले हैं । श्री नेमिनाथ परमात्मा की सेवा के लिए आकर देवता भी आनंद-प्रमोद को पाकर स्वर्ग के महासुख को तृण से भी हल्का मानते हैं । इस तरह रैवतगिरि महातीर्थ की अनेक बातें सुनकर महाराजा की गोद में बैठी राजकुमारी सौभाग्यमंजरी को जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त होते ही वह मूर्छित होती है ।

रैवतगिरि के माहात्म्य की बातें सुनकर मूर्छित सौभाग्यमंजरी शीतोपचार से पुनः चेतनवंती बनकर हर्षविभोर बनकर अपने पिता को कहती है कि, ''ओ पिताजी ! आज का दिन मेरे लिए महामंगलकारी है, उसका कारण आप ध्यान से सुनो ! पूर्वभव में इस परदेशी के द्वारा वर्णित रैवताचल पर मैं बंदरी थी । जातिस्वभाव से चंचल मैं स्वच्छंद और अविवेक से गिरि के शिखर, नदी, झरने, वन और वृक्षो के बीच सतत इधर उधर कूदती थी । उस गिरिशिखर की पश्चिम दिशा में अमलकीर्ति नामक नदी है । विविध प्रकार के विशिष्ट प्रभाववाले अनेक द्रव्यों से भरपूर ऐसी यह नदी श्री नेमिनाथ परमात्मा की अमीदृष्टि से पवित्र बनी है । एक बार कूदते-कूदते मैं बंदर के समूह के साथ इस नदी के किनारे के पास आयी, परन्तु भवितव्यता के योग से यहाँ से वहाँ कूदने के कारण फलित बने आम के वृक्ष की घनी शाखाओं के विस्तार में फँस जाने से लटकते-लटकते थोडे

ही समय में मेरी मृत्यु हो गयी । इस रैवतगिरि महातीर्थ में रहने के प्रभाव से मैं वहाँ से मरकर तिर्यंच भव का त्याग करके आपकी पुत्री के रूप में यहाँ जन्मी हूँ । अत्यन्त रुपवान यह देह होते हुए भी मुझे बंदरी का मुख मिलने का कारण आप सुनो ! उस आम्रवृक्ष की घनी शाखाओं के बीच में फँसा हुआ मेरा शरीर, शाखा के सुकने से धीरे धीरे अमलकीर्ति नदी के जल में गिरने से मनोहर रूप को धारण करनेवाला बना । परन्तु मेरा मुख शाखा में ही फँसे रहने के कारण नदी के सुपवित्र जल के स्पर्श से वंचित रहने से बंदरी के जैसा ही रहा । ओ ! पिताजी ! अब उस नदी के निर्मल जल के स्पर्श से वंचित रहे हुए मेरे उस मस्तक को आप तुरंत ही उस नदी के पावन जल में गिरा दो, जिससे मैं मुख सहित सर्वांगसुंदर बन जाऊँ । इस परदेशी पुरुष से वर्णित रैवतगिरि महातीर्थ के माहात्म्य के श्रवण से मुझे जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हुआ है । इस कारण यह सारा वृत्तांत कहने के लिए मैं समर्थ बनी हूँ ।

राजकुमारी के इन वचनों को सुनकर अत्यन्त विस्मित बने हुए राजा चक्रपाणी ने नदी के तट के पास रहे आम्रवृक्ष की उस घनी शाखाओं में लटकते हुए बंदरी के मुख को पवित्र जल में गिराने के लिए सेवकों को आदेश दिया । महाराज की आज्ञा को शिरोमान्य करके सेवक आज्ञा का पालन करने के लिए दौडे । और जिस समय उस बंदरी के मुख को नदी के जल में गिराया गया उसी समय राजकुमारी सौभाग्यमंजरी भी सर्वांगी सुंदरता को धारण करनेवाली बन गयी । चक्रपाणी राजा भी तीर्थ माहात्म्य के साक्षात् प्रभाव को देखकर अत्यन्त विस्मित हुआ । कोई ही ऐसा मोह के आधीन मंदमति वाला पुरुष होगा, जो ऐसे प्रसंग के प्रति श्रद्धा न रखता हो । क्योंकि मंत्र, औषधि, मणि और तीर्थो की महिमा ही अचिन्त्य होती है ।

महाराजा चक्रपाणि युवावस्था में आयी राजकुमारी सौभाग्यमंजरी के लिए सुयोग्य वर की तलाश में तत्पर बना । लेकिन कर्म की विचित्रता के योग से संसारवास से वैराग्य पाकर सौभाग्यमंजरी ने विवाह के कँटीले मार्ग पर कदम बढाने के बदले शाश्वत सुख की साधना के लिए रैवतगिरि महातीर्थ की तरफ जाना पसंद किया । पिताश्री को अपनी भावना बताकर वह रैवताचल के शीतल सान्निध्य में रहकर तीव्र तप आचरण के द्वारा अनेक जन्मों के अशुभ कर्मों का नाश करते हुए श्री नेमिजिन के ध्यान में मग्न बनकर स्वआयुष्य पूर्ण करके मृत्यु पाकर, तीर्थराग के फल स्वरूप उसी तीर्थ में व्यंतरदेवी के रूप में उत्पन्न होती है। पूर्वभव के भीष्मतप के प्रभाव से उस नदी के द्रह में निवास करके श्री संघ के अनेक विघ्नों का नाश करनेवाली, सर्व देवताओं को अनुसरण करने योग्य महादेवी बनती है ।

वशिष्ठमुनि

भरतक्षेत्र की भाग्यवान भूमि पर आठवें वासुदेव लक्ष्मण समुद्र तक पृथ्वी का पालन करते थे । नदी के किनारे वशिष्ठ नामक एक तापसपति अनेक प्रकार के मिथ्यातप करके अपनी काया को कष्ट देता था । मंत्र-तंत्रादि वेद-वेदांगों का जानकार होते हुए भी कुटिलता की कला में अत्यन्त कुशल होने के कारण वह मिथ्यात्वी जनों में बहुत माननीय था ।

तापसपति कंदमूल, फलादि का आहार और निर्मल जल से अपना निर्वाह करते हुए पर्णकुटीर में रहता था । एकबार पर्णकुटीर के आंगन में विस्तार से उगे हुए घास - धान्यादि को चरने के लिए एक सगर्भा हरिणी वहाँ आयी । स्वभाव से क्रूर-घातकी ऐसे वशिष्ट तापस ने धीमे कदमों से हरिणी के पीछे जाकर, उसके शरीर पर लकडी से तीव्र प्रहार किया । हरिणी के पेट पर हुए दृढप्रहार के परिणाम से उसका पेट फट गया और अंदर से अपरिपक्व हरिणी का बच्चा बाहर गिरा । प्रहार की तीव्र वेदना से तडपती हरिणी ने तत्काल प्राण त्याग किए और साथ ही बच्चा भी मृत्यु को प्राप्त हुआ ।

हरिणी और उसके अपक्व गर्भ की तडपन और मृत्यु के करुण दृश्य को देखकर क्रूर और घातकी हृदयवाले वशिष्ट तापस के अंतर की कठोर भूमि पर भी करुणा और वात्सल्य के अंकुर स्फुरित हुए.... एक तरफ उसके हृदय में पश्चात्ताप के झरने उछल रहे थे, तो दूसरी तरफ चारोओर मनुष्यों की भीड़ में वह अत्यन्त तिरस्कार पात्र बन गया था । बाल और स्त्री घातक के बिरुद से सभी उसके प्रति अरुचि-द्वेषभाव की वर्षा बरसा रहे थे । स्वयं के किए हुए पापकर्मों के पश्चात्ताप से द्रवित हृदयवाले वशिष्टमुनि अपने सर्व कर्मों का प्रक्षालन करने के शुभ आशय से पर्णकुटीर और उस गाँव का त्याग करके विविध तीर्थों की यात्रा के लिए चल पड़े ।

पापभीरु, वशिष्ट मुनि किसी का भी संग किए बिना अकेले ही एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ घूम रहे थे । वशिष्ट मुनि नदी, द्रह, पर्वत, गाँव, समुद्रतीर और जंगलों में घूमते-घूमते, महिनों तक तीर्थ यात्रा करके अपनी अडसठ तीर्थ की यात्रा पूर्ण होते ही अपने आपको शुद्ध हुआ मानकर पुनः अपनी पुरानी पर्णकुटीर में पधारे । एकबार विहार द्वारा पृथ्वीतल को पावन करते हुए एक ज्ञानी जैन महात्मा वशिष्ट मुनि के आश्रम के समीप आत्मसाधना के लिए प्रतिमा ग्रहण करके काउस्सग्ग ध्यान में स्थिर थे । कुछ समय व्यतीत होने पर आसपास के गाँव के अनेक भक्तजन उन महात्मा को वंदन करने आने लगे और पूर्वभवों के वृत्तांत पूछकर अपने संशयरुपी अंधकार को दूर करने लगे । पूर्वभव का कथन करते हुए उन मुनिवर की बातें सुनकर वशिष्ट

तापस भी अपने संशय की बातें महात्मा को पूछने लगे । ''हे भगवंत ! अडसठ तीर्थों की यात्रा से मेरे किए हुए सभी पापकर्मों की शुद्धि हुई या नहीं ?'' तब महात्मा कहते हैं कि ''क्षेत्र और तपश्चर्या के बिना मात्र नदी, पर्वत, वन, गिरि, द्रहों में घूमने मात्र से कर्मों का क्षय नहीं होता । पाप की शुद्धि नहीं होती । मिथ्यात्वी तीर्थ में घूमने से मात्र काया का क्लेश होता है । कर्मक्षय के बदले गाढ कर्मों का बंध होता है । यदि आपको वास्तव में अशुभ कर्मों का क्षय ही करना हो तो चित्त की शुद्धि पूर्वक क्षमा-दया-सत्य-संतोषादि भावों से भावित ऐसे वीतराग परमात्मा का मन में ध्यान करके, रैवतगिरि महातीर्थ में तपश्चर्यादि आराधना करो, जिसके द्वारा तुम्हारे पापों का क्षय होगा ।''

वशिष्ट मुनि पूछते हैं, ''हे भगवंत ! आप कृपालु जिस महातीर्थ की बात कर रहे हो, वह कहाँ आया है ?''

ज्ञानी भगवंत कहते हैं, ''रैवतगिरि महातीर्थ सोरठ देश में बालब्रह्मचारी श्री नेमिनाथ परमात्मा के पावन पदार्पण से पवित्र बना हुआ उत्तम तीर्थ है, पाँच इन्द्रियों का निग्रह करके श्री अरिष्टनेमि प्रभु का निर्मल भाव से एकाग्र चित्त से ध्यान करना उत्तम प्रकार का तप है । यदि आपको पापकर्म का क्षय करके निर्मलपुण्य की प्राप्ति करनी हो तो सद्गति को देनेवाले इस रैवतगिरि का आश्रय करो ।''

ज्ञानी भगवंत के वचनों को हृदय में धारण करके वशिष्ट तापस अत्यन्त हर्षित हृदय से, आनंद से विकसित नेत्रकमल के साथ अंतर में तेजस्वी श्री नेमिप्रभुजी का स्मरण करके समता रस में स्नान करते-करते रैवताचल पर पहुँचे । रैवतगिरि में प्रदक्षिणा देकर उत्तरदिशा के मार्ग से गिरि आरोहण करते हैं । वहाँ मार्ग में छत्रशिला को दक्षिणादिशा की तरफ छोडकर अंबाकुंड के जल से स्नान करते हैं । स्नान करते-करते हृदय कमल में स्फटिक मणि जैसे निर्मल आर्हत तेज का ध्यान करते हुए वशिष्ट मुनि ध्यान और ध्येय को भूलकर अर्हं में तन्मय बन जाते हैं । जैसे ही वे स्नान करके बाहर आते हैं, उस समय आकाशवाणी होती है कि, ''हे तापसमुनि ! घोर हत्या के पाप से मुक्त बनकर अब तुम शुद्ध हुए हो । अंबाकुंड के महापवित्र जल से स्नान करने से तथा शुभध्यान के प्रभाव से तुम्हारे अशुभ कर्म क्षीण हुए हैं । इसलिए अब तुम श्री नेमिनाथ प्रभु की शरण ग्रहण करो ।' वशिष्ट मुनि क्षण दो क्षण आश्चर्य चकित बने, बाद में स्वस्थ हुए, तब आकाशवाणी के दिव्य वचनों का स्मरण करते हुए हर्षाश्रु के साथ तुरंत ही श्री नेमिनाथ भगवान के चैत्य में जाकर नमस्कार करते हैं । सद्भाव पूर्वक स्तुति भक्ति आदि करके समतापूर्वक ध्यान और उग्रतप करके अवधिज्ञान को प्राप्त करते हैं । जिनध्यान में परायण बने वशिष्ट मुनि मृत्यु पाकर परमऋद्धिवान देव बने । उनके हत्यादोष के नाश के कारण अंबाकुंड अब वशिष्टकुंड के नाम से प्रसिद्ध है । उसके जल के संसर्ग से वायु का प्रकोप, व्याधि, पथरी, प्रमेह, कुष्ट, दाज-खुजली आदि रोग नाश होते हैं और दुस्तर ऐसी हत्या के पाप भी क्षय होते हैं ।

गिरनार महातीर्थ के अधिष्ठायक देव

गिरनार महातीर्थ के अचिन्त्य प्रभाव के कारण अनेक आत्माओं ने सन्मार्ग को प्राप्त किया है। इस तीर्थ के उपकारों की अंशात्मक ऋणमुक्ति के लिए वे आत्माएँ देव बनते ही इस तीर्थ के अभ्युदय और रक्षण के कार्य में लग गए हैं। सर्वत्र तीर्थ की यश-कीर्ति फैलाने के महान कार्य में लगकर उन्होंने इस तीर्थ को जगतप्रसिद्ध बनाने के शानदार प्रयास किए हैं।

❖ गिरनार महातीर्थ के वायव्य कोने में श्री नेमिनाथ परमात्मा को मस्तक पर धारण करके सर्व संकटों का नाश करने के लिए इन्द्र महाराजा इन्द्र नामक नगर बसाकर रहे हैं।

❖ गिरनार महातीर्थ के डमर नामक द्वार में जिनेश्वर परमात्मा के ध्यान से पवित्र बने ब्रह्मेन्द्र ने संघ की वृद्धि के लिए अपनी मूर्ति स्थापित की।

❖ गिरनार महातीर्थ के नंदभद्र नामक द्वार में जिनेश्वर परमात्मा के ध्यान से पवित्र मनवाला मल्लिनाथ नामक बलवान देव द्वारपाल के रूप में खड़ा है।

❖ गिरनार महातीर्थ के महाबल द्वार में अपने मस्तक पर छत्र रुप किए हुए जिनेश्वर भगवान के चरणकमल से आतप रहित बनकर बलवान बलभद्र रहा है।

❖ गिरनार महातीर्थ के बकुलद्वार में लोगों के विघ्नरूप तृण के समूह को उडानेवाला महाबलवान वायुकुमार रहा है।

❖ गिरनार महातीर्थ के बदरी द्वार में अपने शस्त्रों से विघ्नरूप शत्रुओं का नाश करनेवाला बदरीश रहा है। उत्तरकुरू द्वार में रहनेवाली सात माता देवियाँ रही हैं।

❖ गिरनार महातीर्थ के केदारद्वार में केदार नामक देव गिरिवर का रक्षक बनकर रहा है।

इस तरह आठ दिशाओं में आठ देवताओं ने निवास किया है। जिस तरह जिनेश्वर देव के पास आठ प्रतिहार्य शोभायमान होते हैं, उसी तरह आठ देवता गिरिवर के ऊपर स्वआयुध ऊँचे करके प्रतिहार्य बनकर तीर्थ की रक्षा कर रहे हैं। श्री नेमिप्रभु की सेवा के द्वारा अत्यन्त पवित्र और निर्मल बने असंख्य देवता इस महातीर्थ पर आनेवाले सभी भव्य जीवों के प्रति वात्सल्यभाव रखकर सभी के मनोरथों को पूर्ण करते हैं।

- मुख्य शिखर से उत्तर दिशा तरफ उस दिशा का रक्षक महाबलवान मेघनाद है ।
- पश्चिम दिशा का रक्षक, वांछित अर्थ को देनेवाला रत्नमेघनाद है ।
- पूर्वदिशा में सिद्धिविनायक नामक देव है ।
- दक्षिण दिशा में सिंहनाद नामक देव है । इन चारों देवों से शिखर चतुर्मुखजी की तरह दिखता है ।
- मुख्य शिखर से चारो दिशाओं में दो-दो छोटे शिखर हैं, वहाँ मृत्यु पाए हुए अथवा जलाने में आए हुए मनुष्य प्राय:देव बनते हैं । वहाँ रहकर तपश्चर्या करने से और श्री नेमिनाथ भगवान का ध्यान धरने से मनुष्य अष्टसिद्धि को प्राप्त कर अन्त में मोक्ष पद को प्राप्त करते हैं ।
- इस शिखर पर छायावृक्ष, घटादार कल्पवृक्ष, काली चित्रकवेली, वांछित फल देनेवाली लतायें, रस कूपिका आदि अनेक पदार्थ हैं जो प्राणियों को अपने पुण्य से ही प्राप्त होते हैं । इस गिरिवर के प्रत्येक वृक्ष में, प्रत्येक सरोवर में, प्रत्येक कूएँ में, प्रत्येक द्रह में, प्रत्येक स्थान में, प्रत्येक शिखर में श्री नेमिनाथ भगवान के ध्यान में सदा तत्पर ऐसे अनेक देवताओं का निवास है ।

किसी कन्या के हार के मध्य में रहे हुए मुख्य रत्न के समान सभी शिखरों के मध्य में ऊँचे शिखर पर श्री संघ के मनोवांछित पूर्ण करनेवाली सिंहवाहिनी अंबिकादेवी का निवास है ।

जहाँ रहकर श्री नेमिनाथ परमात्मा ने थोड़ा सा पीछे मुड़कर देखा था, उनके बिंब के द्वारा पवित्र ऐसा वह शिखर ''अवलोकन'' के नाम से प्रसिद्ध है ।

अंबागिरि के दक्षिण दिशा तरफ सभी शस्त्रों द्वारा युद्ध में मदोन्मत्त ऐसे शत्रुओं के समूह को रोकनेवाला गोमेध यक्ष रहा हुआ है ।

उत्तर दिशा में संघ के विघ्नसमूह को नाश करने में चतुर ऐसी प्रसन्ननयनोवाली महाज्वाला देवी रही हुई है ।

कृष्णवासुदेव ने पूजा करते समय अपना छत्र जिस शिला पर रखकर वापिस लिया था, वह शिला लोक में ''छत्रशिला'' के नाम से प्रसिद्ध है ।

इस गिरिवर पर ऐसे अनेक शिखर और गुफाएँ है, जहाँ जिनेश्वर परमात्मा की सेवा में तत्पर ऐसे अनेक देवताओं ने आश्रय लिया है । इसी कारण से यह गिरि स्वर्ग से भी अत्यन्त मनोहर और देवतामय हो ऐसा लगता है ।

परमात्मा की प्रतिमा का प्रभाव

भारत देश की धन्यधरा पर मुगल साम्राज्य चल रहा था । धर्म जनूनी अनेक मुगल बादशाहों ने जिनेश्वर परमात्मा के शासन को बहुत नुकशान पहुँचाया था । जिनालयों और जिनप्रतिमाओं को धराशायी करने में कितने बादशाहों ने तो पीछे मुडकर भी नहीं देखा । दूसरी तरफ अनेक मुगल बादशाह श्री जिनेश्वर परमात्मा के सिद्धांत और साधु भगवंतों के जीवन को देखकर बहुत ही प्रभावित होने के प्रसंग भी इतिहास में मिलते हैं ।

जिनधर्म की शरण में आए हुए आचार्य जिनप्रभसूरिजी प्रभु के शासन कीं शोभा बढा रहे थे । जन सभा में धर्म और कर्म की बातें विविध प्रकार से बता रहे थे । सूरिजी की वाणी से प्रभावित बादशाह सुरत्राण उनके प्रति अत्यन्त आदरवाले बने और समय-समय पर सूरिवर और राजवर की ज्ञानगोष्ठि चलती रहती थी । एक बार अचानक बादशाह सूरिवर को पूछते हैं कि, ''गुरुवर ! आपके पवित्र मुख से अनेकबार गिरनार गिरिवर की प्रशंसा सुनी है तो क्या सचमुच ! इस गिरनार गिरिवर का कोई प्रभाव है ?''

बादशाह के संशय का समाधान करते हुए सूरिवर कहते हैं, ''बादशाह ! गिरनार महातीर्थ की महिमा ही अनोखी है। अरे ! मात्र जैनधर्म ही नहीं परन्तु अन्यधर्मों में भी इसकी अपरंपार महिमा दर्शायी गयी है। इस गिरनार गिरिवर पर हमारे वर्तमान चौबीशी के बाइसवें तीर्थंकर बालब्रह्मचारी श्री नेमिनाथ प्रभु के दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्षकल्याणक हुए हैं ।''

बादशाह कहते हैं, ''आपके इन पत्थर की प्रतिमाओं और जिनालयों का कोई प्रभाव देखने मिलता है ?''

सूरिजी कहते हैं, ''इस जिनबिंब का प्रभाव अनोखा है । इस प्रतिमा का अस्त्र या शस्त्र से छेदन या भेदन नहीं हो सकता । यह प्रतिमा अग्नि में नहीं जल सकती । वज्रमयी यह प्रतिमा देवाधिष्ठित है ।''

विस्मित होकर बादशाह ने कहा, ''क्या बात करते हो महात्मा !'' (सूरिवर के वचन पर शंका के साथ मन में विचार करने लगा कि मजबूत लोहे के सामने इस पत्थर की प्रतिमा की क्या हैंसियत कि उसके सामने टिक सके ? इस प्रतिमा की कसौटी अवश्य करनी ही चाहिए ।)

समय बीतता गया, बादशाह ने सूरिवर से गिरिवर की यात्रा करने की भावना व्यक्त की और राजवैभव के साथ गिरनार

की तरफ कदम बढाए... देखते ही देखते गिरनार के पास पहुँचते ही गिरनार पर्वत के विविध शिखरों की श्रेणीने बादशाह का मन जीत लिया। गुर्जर देश के गौरव को प्रत्यक्ष निहारकर आज वह आनंद विभोर बन गया था। चारों ओर हरियाली को निरखते हुए बादशाह के नेत्रकमल विकसित हुए। कुदरत की गोद में अचल खड़े इस गिरिवर को देखकर बादशाह हक्का-बक्का बन गया। पर्वत के सीधे चढान से वह श्री नेमिनाथ दादा के जिनालय के प्रांगण में आया। उसके तन की थकावट के साथ दिमाग का पारा भी नीचे उतरने लगा। रंगमंडप में प्रवेश करते ही श्री नेमिनिरंजन को निरखते ही बादशाह मोहित हो गया, क्या यह प्रतिमा है कि साक्षात् भगवान हैं। इसकी परीक्षा हो सकती है ? बादशाह के लगाव और बुद्धि के बीच द्वन्द्व युद्ध शुरु हुआ और अंत में बुद्धि की जीत हुई और उसने परीक्षा करने का निर्णय किया।

बादशाह ने प्रतिमा की परीक्षा करने के लिए शस्त्र शक्ति का उपयोग शुरु किया और सूरिवर ने मंत्रशक्ति का उपयोग शुरु किया। सूरिवर परमात्मा के ध्यान में लीन बने और उसी समय बादशाह ने प्रभुजी की प्रतिमा पर एक के बाद एक दृढ प्रहार शुरु किए परन्तु.... अफसोस ! उसका एक भी प्रहार प्रभुजी की प्रतिमा को नुकसान पहुँचाने में समर्थ न बना। एक तरफ उसका मानभंग होने से उसकी आँखों से आक्रोश के अंगारे बरसने लगे और दूसरी तरफ शस्त्र प्रहार के घर्षण से उस जिनबिंब से चिनगारियाँ झरने लगी। बादशाह इस चमत्कार को देखकर विस्मित हो गया। ये चिनगारी यदि ज्वाला का रूप लेंगी तो मेरी देह जल जाएगी। ऐसे भय से उसने शस्त्र को जमीन पर फेंक दिया।

बादशाह भयभीत बनकर सूरिजी के चरणों में झुक गया। सूरिजी ने ध्यान भंग किया और परिस्थिति को देखकर उनके हर्ष का पार न रहा। सूरिवर ने बादशाह के मस्तक पर हाथ रखकर उसके मिथ्यात्व के जहर का वमन करवाकर सम्यक्त्व के बीज का वपन किया।

बादशाह दौडता हुआ प्रभु के चरणकमल में आलोटने लगा। स्वयं के किए गए दुष्कृत के पश्चात्ताप रुप माफी मांगकर परमात्मा के प्रभाव की परीक्षा करने की भूल का इकरार किया। प्रभु की गोद में मस्तक झुकाकर छोटे बालक की तरह रुदन करने लगा और थोडी देर के बाद स्वस्थ होकर प्रभु के चरणों में सुवर्ण अर्पण कर विदाई ली।

बादशाह जिस दिन परमात्मा की प्रतिमा के प्रभाव का अनुभव करता है, उसी रात को उनके कुछ धर्मजनूनी अनार्य साथीदार भडक उठे और बादशाह के अनुभव किए गए प्रगट प्रभाव को नामशेष करने के लिए एक नया उपाय बनाया।

गिरनार गिरिवर के जिनालयों में जितने भी श्यामवर्णी प्रतिमाजी बिराजमान थे, उन सबको इकट्ठा कर एक कमरे में रख देते हैं और जैन श्रावक वर्ग को बताते हैं कि, ''यदि यह सब काले देव रात को कोई चमत्कार बतायेंगे तो हम ये प्रतिमायें आपको सौंप देंगे, अन्यथा सुबह समग्र सभा के बीच जाहिर में इन प्रतिमाओं को चकनाचूर कर देंगे ।

समग्र श्रावक वर्ग चिंतित हो गया । सभी शोकातुर बन गए । सूर्योदय हुआ । आज तो अनार्यों के आनंद का पार नहीं था । रात को एक भी प्रतिमा ने चमत्कार नहीं बताया । यह बात श्रावक वर्ग को बताते हुए कहा, ''ये तुम्हारे पत्थर के पूतले सारी रात पत्थर की तरह जड ही रहे, न तो उनके मुख से एक भी शब्द निकला या न ही उनका एक भी रोम फरका, अब उनको चकनाचूर होते हुए देखने का परमसौभाग्य आ गया है, उसके लिए तैयार हो जाओ ।''

श्रावक वर्ग भयभीत हो गया । सभी मंत्रमुग्ध बन गए । अब क्या होगा ? इन प्रतिमाजी के चकनाचूर होने से पहले हमारे प्राण निकल जाय । सभी सूरिवर के पास जाकर विनंति करने लगे, ''गुरुदेव ! अब तो आप ही हमारे शरणाधार हो, किसी भी तरह प्रतिमाजी को चकनाचूर होने से बचाओं !''

सूरिवर इस घटना को सुनकर गंभीर बने और तात्कालिक बादशाह को विस्तार से सारी बात बतायी । बादशाह उन धर्मजनूनीयों की इस करतूत से संपूर्ण अज्ञात थे । परन्तु इस हकीकत को जानकर रात को स्वयं को आए हुए स्वप्न की टूटती कडी यहाँ पर जुडती हो, वैसा संकेत मिला । बादशाह ने राजपुरुषों को, इन धर्मजनूनी अनार्यों को स्वयं के समक्ष उपस्थित करने का आदेश दिया ।

बादशाह का आमंत्रण सुनकर अनार्य बहुत उत्साह से आए । रात में घटित घटना बादशाह को बताते हुए उन्होंने कहा, ''इस मूर्ति के प्रभाव की बात बकवास है । महाराजा ! कल तो आप ठगे गये हो । ये काले भूत तो पूरी रात गूंगे ही रहे हैं !'' बादशाह ने गंभीरता से कहा, ''इसके प्रभाव का अनुभव नसीब में हो तो ही होता है । अरे ! आज रात को ही मुझे स्वप्न में एक गंभीर अनुभव हुआ ।'' अनार्यों ने कहा, ''बादशाह ! स्वप्न में क्या कोई प्रभाव देखा ?''

बादशाह ने कहा, ''हाँ, आज रात को भूतों ने मुझे भयंकर चेतावनी देकर सावधान किया कि, यदि कल सुबह तुम्हारे जनूनी अनार्यों के द्वारा जिनप्रतिमा को लेशमात्र भी नुकसान हुआ तो तुम अपने खुदा को याद कर लेना बाद में नरक में तुम्हारा खुदा नहीं मिलेगा ।

बादशाह की गंभीर बातों को सुनकर अनार्य चिन्तित हुए और सोचने लगे कि राजा यदि नाराज होंगे तो हमारे बारह बज जायेंगे । बादशाह अभी तक तो विचार में थे कि अनार्य और प्रतिमा को नुकसान, यह सब क्या है ? परन्तु अनार्यों के स्पष्टीकरण से बादशाह की उलझने सुलझने लगी और स्वप्न की वास्तविकता समझ में आ गयी ।

बादशाह बहुत क्रोधित हुए । उनकी आवेशवाली विकृत मुखाकृति देखकर सभी अनार्य कम्पित होने लगे । बादशाह ने कहा, ''इस जिनप्रतिमा के प्रभाव को बकवास कहनेवाले तुम कौन हो ? यह खुदा तो जीवंत देव है, ऐसे खुदा की प्रतिमा का नाश करने का षड्यंत्र रचने का अधिकार तुम्हें किसने दिया ? तुम्हारे इस काली करतूत की सजारुप तुम्हें फाँसी के फंदे पर लटकाने का मेरा आदेश है । सिपाहियों, इन बदमाशों को फाँसी पर चढाओ ।''

क्रोध के कारण बादशाह की आँखों से अंगारे बरस रहे थे । उनके निर्णय को सुनकर सभी मुग्ध बन गए । सभी के हृदय में करुणा के भाव उभर रहे थे । नगरजन तथा श्रावक वर्ग ने बादशाह को सजा न करने की विनंति की परन्तु बादशाह नहीं माने । अंत में श्रावक वर्ग सूरिजी के पास जाकर विनंति करता है, ''गुरुदेव, बचाओ ! उन धर्मजनूनियों के द्वारा की गयी हरकत से महाराजा कोपायमान हुए और उन्हें 'सजाए मौत' का आदेश फरमाया है । हमने बादशाह से बहुत विनंति की परन्तु वे नहीं माने, गुरुदेव ! अब आप ही उनके तारणहार हो ! कोई रास्ता निकालिए ।''

सूरिवर श्री श्रावकवर्ग की बातें सुनकर चिन्तित हुए । अहिंसा के संदेश को विश्वमात्र में पहुँचानेवाले जिनशासन के ये दूत, इन जीवों की ऐसी हिंसा को कैसे सहन कर सकते हैं ? वे तात्कालिक बादशाह के पास पहुँचे, बादशाह को समझाया कि जिनशासन की नींव जीवदया है । अरे ! सूक्ष्म से सूक्ष्म जीवों की भी जब चिंता की जाती है तब ऐसे जींदे मानवों को फाँसी तो कैसे हो सकती है ? यह प्रभु महावीर का शासन है और ''क्षमा वीरस्य भूषणम्'' इस न्याय के अनुसार अपराधी को सजा देने के बदले उसे क्षमा करना ही शूरवीरता की निशानी है । महाराजा सूरिजी के वचनों से विशेष प्रभावित हुए और उनके वचनों को शिरोमान्य करके उन अनाथ धर्मजूनूनी को बंदीखाने से मुक्त कर दिया गया और सबके हृदय में से निकले हुए ''जैनं जयति शासनम्'' के अंतर्नाद से समस्त वातावरण गूंज उठा ।

तीर्थभक्ति का प्रभाव

धामणउली नामक गाँव में रहनेवाला धार नामक वह व्यापारी था । पूर्वभव के सत्कर्म के कारण पुण्यानुबंधीपुण्य के प्रभाव से इस भव में धनोपार्जन में मानो कुबेर की स्पर्धा न करता हो, इस तरह से शोभित हो रहा था । बहुत उल्लासपूर्वक अपनी धनसंपत्ति का सद्व्यय करके, अनेक लोगों को जीवनदान देते हुए, वह अपने पांचो पुत्रो के साथ संघ का अधिपति बनकर आनंदपूर्वक गिरनारजी की यात्रा करने गया । उसका संघ श्री गिरनार महातीर्थ की तलेटी के मैदान में छावणी डालकर रहा ।

गिरनार तीर्थ में रहा हुआ संघ बाइसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ प्रभु के दर्शन करने के मनोरथ कर रहा था । उस वक्त, उसी विस्तार में दिगंबर जैन पंथ के अनुयायी एक राजा, यह शेठ श्वेतांबर जैन पंथ के अनुयायी होने के कारण उन्हें इस गिरनार गिरिवर पर चढ़ने से रोकने लगा । प्रभु दर्शन, पूजन, स्पर्शन की कामना के साथ हर्षोल्लास से प्रयाण करनेवाले धार नामक श्रेष्ठि का संघ गिरिराज आरोहण करने का प्रयत्न करने लगा । उस समय दिगम्बर राजा की सेना द्वारा इस संघ उपर आक्रमण करने से दोनों पक्षों के बीच युद्ध शुरु हुआ । उस वक्त श्री नेमिनाथ प्रभु के प्रति अपार भक्ति से धारश्रेष्ठि के पांचो पुत्रों का सत्त्व स्फुरायमान होने से पांचो भाईयों ने अप्रतिम साहसपूर्वक युद्ध करना शुरु किया । तीर्थभक्ति के अतिशय राग से पांचों पुत्रों ने जान की बाजी लगाकर जंग खेलकर दुश्मन की सेना के अनेक सैनिकों को हराते हुए मरण की शरण में चले गए। तीर्थभक्ति के अविरल राग के प्रताप से वे पांचों पुत्र मरकर वहीं उसी क्षेत्र के अधिपति बने । तीर्थक्षेत्राधिपति के रूप में उत्पन्न हुए उन पांचों पुत्रों के अनुक्रम से १. कालमेघ, २. मेघनाद, ३. भैरव, ४. एकपद और त्रैलोक्यपद इस तरह नाम पडे । और तीर्थशत्रुओं का पराभव करते हुए उन पांचो ने पर्वत के आसपास विजय की वरमाला को ग्रहण किया।

विचक्षण वस्तुपाल

गौरववंत गुर्जरदेश के धोलका स्टेट में राजा वीरधवल की हुकुमत चल रही थी । राजा वीरधवल के मंत्रीश्वर आशराज जैन धर्मी थे । वे सुंहालक नामक गाँव में अपने परिवार के साथ रहते थे । धर्मपत्नी कुमारदेवी ने तीन पुत्र और सात पुत्रियों को जन्म दिया ।

मंत्रीपद पर रहे हुए आशराज अत्यन्त कुशाग्रबुद्धिवाले और व्यवहारकुशल होने के कारण पुत्र मल्लदेव, वस्तुपाल, तेजपाल और सातों पुत्रियों की उच्चतम परवरीश की । और पूर्वभव के प्रचंड पुण्योदय से वस्तुपाल और तेजपाल बाल्यावय से ही अत्यन्त तेजस्वी और पुण्यशाली थे । उन दोनों भाईयों के बीच एक दूसरे के प्रति प्रेम और जिनेश्वर परमात्मा के शासन और धर्म के प्रति दृढ श्रद्धा देखकर तो ईर्ष्या हुए बिना नहीं रहती !

शैशवकाल, कुमारवय और अनुक्रम से युवावस्था को प्राप्त दोनों बंधु युगल ने अनुक्रम से ललितादेवी और अनुपमादेवी नामक साक्षात् लक्ष्मी स्वरूप दो स्त्रियों को अपना जीवनसाथी बनाया । दिन बीतने लगे । पिता आशराज ने इस मनुष्यलोक से देवलोक की तरफ प्रयाण किया । वस्तुपाल-तेजपाल सपरिवार मांडल गाँव में आकर रहने लगे । परन्तु आयुष्य की डोर किसकी, कब, किस समय टूटती है ? कहा नहीं जा सकता । मांडल मैं आने के बाद थोडे समय में कुमारदेवी भी प्रभु की शरण हो गए । घर में साक्षात् भगवान तुल्य मातापिता का वियोग अत्यन्त दुःखदायी होता है । दोनों बंधु हृदय को हल्का करने के लिए, तथा मन को प्रफुल्लित करके शोकसागर से बाहर निकलने के लिए श्री सिद्धाचल महातीर्थ की यात्रा के लिए निकले ।

तीर्थाधिराज शत्रुंजय गिरिराज के दर्शन, पूजन और स्पर्शना से मन के साथ-साथ आत्मा के बोझ को हल्का करके बंधुयुगल जीवन यात्रा की आगामी मंजिल को प्राप्त करने के लिए व्यवसाय की तलाश में पालीताणा से निकलकर गाँव-गाँव की भूमि पर अपने भाग्य को आज़माने के लिए निकल पडे । धोलका स्टेट के धोलका गाँव की भूमि के साथ पूर्वभव का कोई हिसाब पूरा करने के लिए थोडे दिनों की स्थिरता की । उस दौरान महाराजा वीरधवल राज्य व्यवस्था के लिए कोई प्रज्ञावान प्रधान और शूरवीर सेनापति की तलाश में था । बंधु युगल की थोडे दिनों की स्थिरता से राजपुरोहित के साथ मित्रता का नाता बंध गया था । महाराजा की समस्या को जानकर राजपुरोहित ने विनंति की ''कि आप जैसे दो राजरत्नों की तलाश में हो, वैसे दो लक्षणवंत नौजवान अपने नगर में स्थिरता कर रहे हैं । सौम्य स्वभाव, कार्यकुशल, राजनीति में निपुण ऐसे इस युवायुगल

के मस्तक का तिलक उनके खानदान और जैनधर्म की शोभा को बढानेवाला है । यदि आपकी आज्ञा हो तो उस युगल को आपके सामने उपस्थित करूँ ।''

जिस तरह जौहरी हीरे के मूल्य को जानता है, उसी तरह महाराजा ने उस पुण्यशाली बंधुयुगल को ललाट के चिन्हों से योग्य जानकर अत्यन्त हर्षोल्लास पूर्वक राज्य का कार्य भार सौंपकर परम आनंद का अनुभव किया ।

राज्यभार के सुव्यवस्थित संचालन की सुवास आसपास के गाँवों में फैलने लगी । ज्येष्ठ बंधु वस्तुपाल को धोलका और खंभात का मंत्रीपद दिया गया, और तेजस्वी तेजपाल को राजसैन्य के सेनाधिपति का पद दिया गया । दोनों बंधुओं ने अपने शौर्य और समझदारी के समन्वय से राजा और प्रजा के हृदय के साथ-साथ राजभण्डारों को भी भर दिया । सर्वत्र शांति और समाधि का संगीत गुंज उठा । राजकार्य के साथ-साथ जिनेश्वर परमात्मा की आज्ञा को वफादार ऐसे दोनों भाइयों की कीर्ति सर्वत्र फैलने लगी । अष्टमी, चतुर्दशी के तप के साथ सामायिक प्रतिक्रमण आदि नित्य आवश्यक के पालन के साथ परमात्म भक्ति, साधर्मिक भक्ति और अनुकंपादि चतुर्विध धर्म प्रवृत्ति में सतत व्यस्त रहते... अनेक जिनालयों के निर्माण का लाभ लेकर सद्गति को प्राप्त करने के प्रयत्न में लीन रहते थे । एक बार गिरनार गिरिवर की संघ के साथ यात्रा करने का अवसर आया।

दूसरी तरफ अनेक गाँवों से उग्रविहार करके बालब्रह्मचारी नेमिप्रभु के मिलन के मनोरथ के साथ अनेक महात्मा गिरनार गिरिवर की तलहटी पर पहुँचे । अनंत तीर्थंकरों के कल्याण की इस कल्याणक भूमि की स्पर्शना की संवेदनाओं के द्वारा शिवपद की साधना करने के लिए गिरनार के सोपान चढने लगे । हृदय में हर्ष का पार न था । परन्तु अचानक आसमान पर चढे हुए उनके अरमान पृथ्वीतल पर चूर-चूर हो गए । एक हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति ने उन्हें आगे बढने से रोका, कारण पूछने पर उसने कहा कि ''इस गिरिराज पर आरोहण करना हो तो पहले कर [टेक्स] भरना पडेगा अन्यथा आगे नहीं बढ़ सकते हो ।''

आश्चर्यचकित हुए महात्मा ने कहा अरे भाई ! प्रभु के द्वार पर पहुँचने के लिए पैसे भरने पडते हैं ? अरे ! हम तो निष्परिग्रही हैं । हमारे पास पैसा कहाँ से आए ? उस व्यक्ति ने कहा, ''महाराज ! दूसरी, तीसरी बातें किए बिना पहले कर की रकम चुकाओ, फिर आगे बढो !''

महात्मा पीछे मुडे... यह दुराग्रही किसी भी तरह माने वैसा नहीं था । वे सोचने लगे कि यह कैसी विचित्रता है जो विश्व विभूति को मिलने के लिए भी मूल्य चुकाना पडता है ? यह तो बिल्कुल सहन हो सके वैसा नहीं है । बस ! इस मनोमंथन

के अंत में गिरनार गिरिवर के यात्रालुओं से लिया जानेवाला यात्रिककर किसी भी तरह रद्द होना ही चाहिए, ऐसा विचार उनके मानसपट पर आया । दूसरे दिन पुनः महात्माओं ने गिरि आरोहण प्रारंभ किया । जब तक कर नहीं भरेंगे तब तक यात्रा नहीं होगी, ऐसे शब्द उन्हें पुनः सुनाई दिए । मुनिवर वापस अपने आवास की तरफ लौटे । परन्तु यात्रिककर बंद करवाने के उनके विचार की तरंगें मानो धोलकास्टेट के मंत्रीश्वर के दिमाग तक न पहुँची हो ऐसा एहसास हुआ ।

दूसरे दिन संध्या के समय मुनिवर को समाचार मिले कि धोलका नरेश के महामंत्रीश्वर वस्तुपाल संघ लेकर कल गिरनार महातीर्थ की तलहटी में पधार रहे हैं । मुनिओं को अपनी भावना पूर्ण होने के संकेत मिले । वस्तुपाल को यात्रिक कर की जानकारी थी । परन्तु तीसरे दिन परिस्थिति का निरीक्षण करके उन्होंने सोचा कि यह मामला बल से नही परन्तु बुद्धि से हल करना पड़ेगा। उसी समय वे महात्मा भी गिरिवर पर आरोहण करने के लिए आगे बढे । इन महात्माओं पर कोई आंच न आए इसलिए मंत्रीश्वर ने उन्हें थोडा समय रूककर संघ के साथ यात्रा करने की विनंति की और यात्रिककर के विषय में वर्तमान परिस्थिति की जानकारी दी ।

महात्माओं को प्रभुमिलन में अंतराय करनेवाले यात्रिककर को किसी भी तरह दूर करने के विचार में व्यस्त मंत्रीश्वर को देखकर महात्माओं ने लाभ उठाया ।

मंत्रीश्वर ! आप जैसे कुशाग्रबुद्धि वाले हाज़िर हो तब भाविक वर्ग को परमात्मा के दर्शन-पूजन और तीर्थस्पर्शना करने के लिए कर चुकाना पड़े ? यह बात अत्यन्त शरमजनक है । आज तो आप हमें इस संघ के साथ यात्रा करवा देंगे । परन्तु अन्य भाविकों का क्या ? भविष्य में इस महातीर्थ के दूर-दूर से दर्शन करने के लिए आनेवाले महात्माओं का क्या ? मुनिवर भी पूरे जोश के साथ अस्खलित धारा से मंत्रीश्वर के मानसपट पर सवार हो गए । मंत्रीश्वर के अंतर में रही यात्रिककर को बंद करने की चिनगारी अब ज्वाला बनकर भड़क उठी ।

महात्माओं ने मंत्रीश्वर की मनःस्थिति को जानकर कहा कि, मंत्रीश्वर ! यह कैसी विचित्रता ! दो-दो दिन से गिरिवर की यात्रा करने के लिए हमारा प्रयत्न निष्फल गया । हमने तो इस यात्रिककर को हमेशा के लिए बंद करवाने का भीष्मसंकल्प किया है । अब जरूरत है आप जैसे प्रभु के शासन के प्रति अत्यन्त रागवाले शूरवीर की ! यदि आपका साथ मिले तो सफलता दूर नहीं ।

मंत्रीश्वर ने सहायक बनने की संमति देते हुए कहा कि, ''महात्मा आप आज्ञा दीजिए सेवक तैयार है । प्रभु के शासन के लिए यदि मुझे अपना मस्तक भी कटवाना पडे तो यह मेरे जीवन का स्वर्णिम दिन बनेगा'' ।

महात्मा और मंत्रीश्वर ने यात्रिककर बंद करने के उपाय के विषय में चर्चा विचारणा करने के बाद मुनिवरों ने गिरि आरोहण करना प्रारंभ किया । पीछे से रुकने का आदेश आने के बाद भी मुनिवर दृढ मनोबल के साथ मंदगति से आगे बढ रहे थे। तब वापस आक्रोश के साथ आवाज़ आयी सुनते हो कि नहीं ? रोज-रोज इस तरह मुफ्त में चले आते हो ? कुछ शरम है या नहीं ? कितनी बार कहा है कि यात्रिककर ५ द्रम न भरो तब तक एक सीढी भी नहीं चढनी ।

अधिकारी के आक्रोश के सामने महात्मा भी भड़क उठे और ''ईंट का जवाब पथ्थर से'' इस न्याय से उग्रता पूर्वक सामने जवाब दिया कि ''हमारे देवाधिदेव के दर्शन करने के लिए क्या मूल्य चुकाना पडता है ? दादा का दरबार तो हमेशा सब के लिए खुला ही होता है । उसमें भी हमारें जैसे निष्परिग्रही साधु के पास संपत्ति कैसी ? हमने तो हमारे सौंदर्य की अतिमूल्यवान पूंजी के समान हमारे सिर के बालों का भी त्याग किया है तो आपको क्या दें ? हम जैसे मस्तक मुण्डितों को यात्रिककर क्यों भरना ?'' दोनों पक्षों के बीच शब्दों की आतिशबाजी चली । और भयंकर शब्दयुद्ध के अंत में सामनेवाले पक्ष के स्वरबाणों को चकनाचूर करके यात्रिककर के नियम को नष्ट करके मुनिवरों ने दो दिनों की घोर तपश्चर्या के अंत में गिरिवर के दर्शन प्राप्त किए ।

इस तरफ खुद का सोचा हुआ न होने से यात्रिककर वसूल करनेवाले अधिकारियों का क्रोध आसमान पर चढा । वर्षों से चली आ रही यात्रिककर की पद्धति नष्ट होने का एहसास होने लगा । स्वयं की मानहानि सहन नहीं होने के कारण न्याय प्राप्त करने के लिए वे सब महामात्य के पास पहुँचे । मंत्रीश्वर ने उन्हें बोलने का अवसर दिया । थोडी ही देर में मंत्रीश्वर ने उन्हें आश्वासन दिया और कहा कि हम इस विषय में जरूर विचार करेंगे । उन अधिकारियों के दिल को ठंडक मिली । थोडी ही देर में मंत्रीश्वर ने मुनिवरों को संदेश भेजा और उनका आगमन होते ही मंत्रीश्वर ने पूज्यों के प्रति औचित्य पालन कर अत्यन्त बहुमान पूर्वक उनका सत्कार किया ।

यात्रिककर के अधिकारियों ने मंत्रीश्वर के समक्ष अपनी शिकायत की प्रस्तुति की कि, ''महामात्य ! इन महात्माओं ने वर्षों से चली आ रही हमारी यात्रिककर की परंपरा को तोडकर जबरदस्ती, कल गिरिवर की यात्रा करने निकल पडे । हमारी वर्षों से चली आ रही व्यवस्था का खुलेआम बहिष्कार किया है, इस विषय पर योग्य न्याय देने की आपसे प्रार्थना करते हैं।''

कुशाग्रबुद्धि वाले मंत्रीश्वर ने भी दूसरे पक्ष को अपना बचाव करने के लिए योग्य अवसर दिया। मंत्रीश्वर ने कहा, ''इस विषय में आपको कुछ कहना है ?'' मुनिवरों ने अवसर का लाभ उठाते हुए कहा, ''महामात्य ! इन भाग्यशालियों की बात बिल्कुल सत्य है कि हम यात्रिककर भरे बिना ही गिरि आरोहण करके परमात्मा के दर्शन करके आए हैं, लेकिन..... मंत्रीश्वर ! आप ही बताईए कि हमारे जैसे मुण्डितों के लिए यात्रिककर कैसे हो सकता है ? हम तो अपरिग्रही हैं। हमारे पास पैसा कहाँ से आए ? मंत्रीश्वर। ३-३ दिनों से हम परमात्मा के दर्शन के लिए तडप रहे हैं। अरे ! हमारी भी सहनशीलता की कोई हद है ? परमात्म दर्शन करने के लिए पैसे भरने ? यह कहाँ का न्याय है ? महापवित्र - परमकल्याणकारी अनंत तीर्थंकरों के कल्याणकों से पुनित बनी इस पावनभूमि की सुवास लेने के पैसे दिए जाए मंत्रीश्वर ! यह तो राज्य के साथ महाराजा के लिए भी अत्यन्त शरमजनक बात है। आप जैसे प्रचंडपुण्य और तीक्ष्णबुद्धि के स्वामी ऐसे अवसर पर योग्य न्याय नहीं देंगे तो दूसरा कौन न्याय करेगा। मंत्रीश्वर ! वर्षों से चलती आ रही इस अनुचित परम्परा का विच्छेद होना ही चाहिए।

मुनिवरों की अस्खलित वाग्धारा को अपलक नयनों से निहारते हुए मंत्रीश्वर भी अवाक् बन गए। दो पल के विलंब के बाद उन यात्रिककर अधिकारियों की तरफ दृष्टि करते हुए मंत्रीश्वर ने कहा कि, ''महात्माओं की इन बातों के विषय में आपका क्या अभिप्राय है ?''

मंत्रीश्वर ! महात्मा की बात सत्य होगी परन्तु वर्षों से चल रही हमारी इस परम्परा को थोडी भी आंच आए, यह हम कैसे सहन करें। प्रत्येक व्यक्ति के ५ द्रम तो हमें मिलने ही चाहिए। इस तरह अधिकारियों ने अपने हृदय की बात कही।

मंत्रीश्वर ! थोडी देर के लिए चिंतन करने लगे। कुछ समय बाद उन्होंने गंभीरतापूर्वक उन अधिकारियों से कहा कि, ''भाइओं ! एक तरफ इस सृष्टि के आधार समान ये महात्मा हैं और दूसरी तरफ प्रजाजन ! प्रातः स्मरणीय इन गुरुभगवंतों की भावना का उल्लंघन करना ठीक नहीं है। दूसरी तरफ आप सभी की आजीविका की वास्तविकता भी नज़रअंदाज़ नहीं की जा सकती। ऐसे संयोग में आप सभी मिलकर कोई बीच का रास्ता निकालिए यही इच्छनीय है।''

मंत्रीश्वर की बात सभी को विचारणीय लगी, क्योंकि रोज-रोज यात्रिककर इकट्ठा करने में आती हुई समस्याओं का अनुभव तो सभी को था ही। परन्तु यात्रिककर के सिवाय आजीविका का अन्य कोई विकल्प नहीं था। ऐसे में बीच का रास्ता निकालने के लिए वे आपस में चर्चा कर रहे थे, परन्तु उन्हें कोई रास्ता मिल नहीं रहा था। तब मंत्रीश्वर ने ऊँची आवाज में कहा कि,

''अभी तक क्या विचार कर रहे हो ? यदि आपके पास इस समस्या का कोई समाधान नहीं है तो यह जिम्मेदारी मुझे सौंप दो। मेरा निर्णय सभी को स्वीकार्य होगा न ? बाद में उस निर्णय में किसी भी तरह की छूटछाट का अवकाश नहीं रहेगा, चलेगा न ?''

''अरे ! मंत्रीश्वर ! आप जो न्याय करेंगे, उसमें पक्षपात का अवकाश हो ही नहीं सकता । आपके वचन हमें शिरोमान्य रहेंगे । उसमें लेशमात्र भी शंका मत कीजिए । आप इस विषय में निश्चिंत बनकर अपना अभिप्राय फरमाईए । जिससे विश्ववंदनीय वैरागी ऐसी विभूतियों की भावना भी टिकी रहे, और हम गरीबों की भी समस्या का हल हो जाय ।'' सभी हाथ जोडकर मंत्रीश्वर को विनंती करते हैं ।

विचक्षण बुद्धिवाले मंत्रीश्वर ने अत्यन्त स्नेहपूर्वक सभी के विश्वास को जीतकर सभी की संपूर्ण संमतिपूर्वक घोषणा की कि ''देवाधिदेव बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिप्रभु के ३-३ कल्याणकों से पावन बनी इस गिरनार गिरिवर की भूमि पर आज से यात्रिककर बंद किया जाता है । यदि कोई भूल से भी यह कर वसूल करने का प्रयत्न करेगा तो उसे कडक से कडक सज़ा दी जाएगी । आप सब की आजीविका के लिए गिरनार गिरिवर की गोद में रहा कुहाडी गाँव आप सभी को सौंपा जाता है। इस कुहाडी गाँव की संपूर्ण कमाई पर आज से आप सभी का अधिकार होगा । आज से आप सब इस गाँव के मालिक हो। अब तो आपकी चिंता दूर हुई न ? अब तो आप खुश हो न ?''

मंत्रीश्वर के सुवर्णवचनों के श्रवण से सभी के मनमयूर नाच उठे । कुहाड़ी गाँव की संपूर्ण कमाई के अधिकार के दस्तावेज पाकर सभी निश्चिंत बने । वातावरण में चारों ओर तीन लोक के नाथ श्री नेमिप्रभु की तथा मंत्रीश्वर वस्तुपाल की जयजयकार होने लगी । गिरनार गिरिवर की गुफाओं से निकलते जयजयकार शब्द के घोष से सकल सृष्टि में प्रशमरस की सुवास फैल गयी ।

तीर्थरक्षा का तेज सितारा

यात्रा सत्रागारं, सुकृततततेर्दुष्कृतापहृतिहेतुः ।
जनिधनवचनमनस्तनु-कृतार्थता तीर्थकृत्त्वफला ॥

''यात्रा, पुण्य की श्रेणी की दानशाला है, पाप को नाश करनेवाली है, जन्म, धन, वचन, मन और शरीर को कृतार्थ करनेवाली है तथा तीर्थंकर नामकर्म की प्राप्ति करवाने वाली है ।''

तीर्थयात्रा के ऐसी विशिष्ट महिमा को जानकर, विविध प्रकार के दान से देदीप्यमान ऐसी यश-कीर्तिवाले, सुवर्णसिद्धि प्राप्त करनेवाले, गुरुवर के हृदय में स्थान प्राप्त करने वाले, मंत्रीश्वर पृथ्वीधर अर्थात् पेथडमंत्री संघ सहित सिद्धाचल महातीर्थ की स्पर्शना करने पधारे । अत्यन्त उल्लास के साथ गिरिवर को जुहारकर श्री सिद्धाचल के शिखर पर बिराजमान श्री आदिनाथ भगवान की वंदन, पूजन आदि क्रियाओं के द्वारा भक्ति करके अत्यन्त प्रशंसा को प्राप्त कर मंत्रीश्वर ने २५ धडी सुवर्ण से युगादिदेव के चैत्य को सुशोभित किया ।

सिद्धिगिरि में सिद्धपद को प्राप्त हुए अनंत आत्माओं के स्मरण की सुवास का आस्वादन करने के लिए रुके हुए संघ ने कुछ दिनों के पश्चात् रैवताचल महातीर्थ की तरफ प्रयाण किया । अनंत-अनंत तीर्थंकर परमात्मा के दीक्षा-केवलज्ञान और मोक्षकल्याणक से पावन बनी गिरनार गिरिवर की भव्य भूमि की स्पर्शना के मनोरथों के साथ संघ के दिन बीत रहे थे । वर्तमान चौवीशी के बाईसवें तीर्थंकर, बालब्रह्मचारी श्री नेमिनिरंजन, तथा अतीत चौबीसी के आठ तीर्थंकर के दीक्षा-केवलज्ञान और मोक्षकल्याणक और दूसरे दो तीर्थंकरों का मात्र मोक्षकल्याणक, अनागत चौवीशी के चौवीशों तीर्थंकरों के मोक्षकल्याणक से पावन ऐसी रैवतगिरि तीर्थ की पवित्र भूमि के स्पर्श से सभी अपने जीवन को धन्य बनाने के लिए तडप रहे थे । दूर-दूर से रैवतगिरि के शिखरों को देखते ही सभी आनंदविभोर बन गए ।

मंगल प्रभात में पेथड मंत्री के संघ ने रैवतगिरि की मनमोहक तलहटी में प्रवेश किया । उसी समय योगिनीपुर-दिल्ली के रहेवासी अग्रवालकुल में जन्मे हुए अल्लाउद्दीन बादशाह का कृपापात्र पूर्ण नामक श्रेष्ठि जो दिगंबर मत का कट्टरपक्षी था, वह भी संघ लेकर रैवतगिरि की तलहटी में तंबू डालकर रहा था । रूप और रुपये उसके दास बने हुए थे । धनवैभव का मद भी

आसमान को छू रहा था ।

सुबह ठंडक के वातावरण में दोनों संघों ने तीर्थयात्रा के लिए प्रयाण किया । उसी समय दिगंबर संघ के आरक्षकों ने श्वेतांबर संघ के यात्रिकों को यात्रा करने से रोका । यह तीर्थ दिगंबरों का है, यहाँ हम तुमसे पहले आए हैं, इसलिए सर्वप्रथम यात्रा हम करेंगे । दिगम्बरों की इस बात का अवमूल्यन करते हुए श्वेतांबर संघ आगे चलने लगा । मानकषाय से गर्वित दिगंबर संघपति पूर्णश्रेष्ठि क्रोधित हुए । और सैन्य के पीठबल के साथ चुनौती दी - सावधान ! अगर एक भी कदम आगे बढ़ाया तो तुम्हारा मस्तक धड से अलग करने में एक क्षण का भी विलंब नहीं होगा ।

पूर्णश्रेष्ठि का दिमाग सातवें आसमान पर पहुँच गया है, ऐसा जानकर कुशल बुद्धिमान पेथडमंत्री ने बल के सामने कला से कार्य करने का निर्णय किया । भूतकाल के इतिहास का एक-एक पन्ना उलटकर दिगंबरों के पराभव के प्रसंगों का वर्णन कर युक्तिपूर्वक यह तीर्थ श्वेतांबरों का ही है यह बात पूर्णश्रेष्ठि के दिमाग में बिठाने का बहुत प्रयत्न किया । परन्तु पूर्णश्रेष्ठि इस बात को स्वीकार करने के लिए तैयार न हुए । अनेक प्रकार के वाद-विवाद हुए । दोनों संघपतियों के बीच वाक्‌युद्ध चला । दिगंबरों का जूनून बढने लगा । पूर्णश्रेष्ठि क्रोध से लालपीला हो गया ।

वर्षों के अनुभव के कारण तीक्ष्ण बनी हुई बुद्धिवाले दोनों पक्ष के वृद्ध पुरुष आगे आए, और बोले ''आप दोनों पुण्यशाली पुरुष हो । किसी प्रचंड पुण्योदय के योग से इस महातीर्थ के संघपति बनने का सौभाग्य आपको मिला है । अनेक भवों के कर्मबंधन का क्षय करनेवाले इस महातीर्थ की पावन भूमि के स्पर्श को प्राप्त करने के पश्चात् वाद-विवाद क्यों ? आप दोनों इस विवाद का त्याग कर एक साथ ही गिरिवर पर आरोहण करो, जिससे संघ को आगे पीछे होने के झगड़े का अवकाश ही न रहे । अभी यह तीर्थ न तो दिगंबर का है न ही श्वेतांबर का । ऐसा विचार करके श्री नेमिनाथ दादा के दरबार में पहुँचो ! बाद में इन्द्रमाला पहनने के अवसर पर चढावें में जो धनद्रव्य ज्यादा प्रमाण में बोलेंगे उनका यह तीर्थ ! क्योंकि क्षत्रिय शस्त्र से युद्ध करते हैं, पंडित शास्त्र से युद्ध करते हैं, क्षुद्र हाथ से झगडते हैं, स्त्री कटुवचन से कलह करती है, पशु सिंग से कलह करते हैं, और व्यापारी धन से कलह करते हैं । हम भी व्यापारी होने के कारण उसी तरह से कलह का निवारण करें, यही शोभास्पद लगता है ।''

विबुध ऐसे बडों के हितकारी वचनों को दोनों पक्षों ने सहर्ष स्वीकार किया । सर्व यात्रिकों ने गिरि आरोहण के लिए

प्रयाण किया । सभी श्री नेमिनाथ प्रभु के मुखकमल को देखकर मंत्रमुग्ध बन गए । अत्यन्त भावपूर्वक परमात्मा को नमस्कार करके, स्नात्र, ध्वजारोहण, नृत्य और स्तुति आदि अनेक प्रकार की भक्ति में मग्न बन गए । इन्द्रमाला के चढावे का समय आया। आज यह तीर्थ किसका ? इस गहरे प्रश्न के लिए दोनों पक्ष अपनी सर्व धनसंपत्ति को प्रभु के चरणों में, समर्पित करने के लिए तैयार हुए । ''विधि के लेख को कोइ मिटा नहीं सकता'' इस कहावत की सत्यता बताने के लिए श्री नेमिनाथ प्रभु की बायीं ओर पूर्णचन्द्र श्रेष्ठि और दायीं ओर, मानों विजय की वरमाला पहनने के संकेत से, पेथडमंत्री स्वाभाविकता से ही खड़े रहे ।

गिरनार गिरिवर स्वयं की मालिकी का है ऐसा साबित करने के लिए दोनों पक्षों ने पहले सोनामहोर बाद में अनुक्रम से सुवर्ण के सेर प्रमाण और अंत में सोने की धडी के द्वारा चढ़ावे बोलना प्रारंभ किया । (१ धडी = १० मण = २०० किलो) पेथडमंत्री ने इन्द्रमाला के लिए सुवर्ण की ५ धडी कही.... पूर्ण श्रेष्ठि ने कहा ६ धडी, पेथडमन्त्री ने कहा ७ धडी इस तरह अनुक्रम से बढते-बढते धडियों की संख्या बढने लगी तब पेथडमंत्री ने कहा १६ धडी सुवर्ण ! उस समय पूर्ण श्रेष्ठि चुप हो गया । उसने तुरंत मंत्रीश्वर के पास आठ दिनों की मोहलत मांगी । पेथडमंत्री तो जोश में थे । उन्होंने पूर्णश्रेष्ठि की मांग को सहर्ष स्वीकार करके आठ दिनों के बदले १० दिनों की मोहलत दी ।

पूर्णश्रेष्ठि ने संघ में आए हुए सभी यात्रिकों के पास जितना हो उतना सुवर्ण लेना प्रारम्भ किया । इस तीर्थ की मालिकी के खातिर सभी ने अपने हाथ के कंगन, सोना महोर, गले के हार आदि विविध आभूषणों का ढगला कर दिया । इकट्ठे हुए सुवर्ण की संख्या २८ धडी हो गयी । और उसी दौरान दिल्ली से भी सुवर्ण आने की तैयारी थी । आज पूर्णश्रेष्ठि के आनंद का पार न रहा । अब तो इस तीर्थ की मालिकी हम से दूर नहीं, ऐसी कल्पना के साथ समस्त दिगंबर संघ में आनंद का सागर उछल रहा था ।

इस तरफ पेथडमंत्री ने भी दिगंबर संघ के उल्लास और तीर्थ के प्रति लगाव को अपनी विचक्षण बुद्धि की मापपट्टी से मापा । उसे भी यह खेल बराबरी का है ऐसा अंदाज आ गया था । तुरंत ही उसने २४ मिनिट में १ योजन का अंतर पार कर सके वैसी शीघ्रगामिनी ऊंटनीयों को सुवर्ण लाने के लिए मांडवगढ की तरफ भेजा ।

इन्द्रमाला के चढावे की महोलत पूर्ण होते ही पुनः इस तीर्थ के प्रश्न का अंत लाने के लिए अंतिम दाव खेलते हो वैसे पूर्णश्रेष्ठि ने पुनः पेथडमंत्री को चुनौती दी । 'अट्ठावीस धडी सोना' इस समय पूर्णश्रेष्ठि तीर्थ हाथ में आ गया हो वैसे उल्लास

से समग्र श्रोतावर्ग की तरफ अहंकार दृष्टि से नज़र करने लगा । आज मंत्रीश्वर के कानों में भी तीर्थरक्षा नामक एक मंत्र सतत गुंज रहा था । वे अधीर बन गए । उन्हें १-१ पल वर्ष के समान लग रही थी । चढावें में १-१ धडी सुवर्ण बढाकर आगे बढने में निरर्थक समय को व्यर्थ करने जैसा है, ऐसा अहसास हुआ । गिरनार गिरिवर में वनकेसरी की तरह पेथडमंत्री ने भी सिंह गर्जना करते हुए कहा ''छप्पन धडी सोना' .

पल दो पल समग्र सभा चौंक गयी । सभी की नज़र पूर्णश्रेष्ठि के मुख पर थी । वह भी मुग्ध बन गया । क्या करना ? क्या नहीं करना ? सब कुछ भूल गया । थोडी ही देर में स्वस्थ बनकर अपने पक्ष को बचाने के लिए विनंति करने लगा । लेकिन दिगंबर संघ ने स्पष्ट कह दिया कि ''अब हमारी कोई शक्ति नहीं है, आपके पास संपत्ति हो तो आगे बढना ! हमारे सभी बैल, बैलगाडियाँ और मनुष्यों को अगर बेच दें, तो भी इतना सुवर्ण इकट्ठा नहीं हो सकेगा । और इस तरह सब कुछ खाली करके भी तीर्थ प्राप्त करने का कोई अर्थ नहीं है । हम इस तीर्थ को अपने घर तो नहीं ले जानेवाले हैं । तो फिर घर जलाकर तीरथ करने का व्यर्थ प्रयास किस काम का ?

पूर्णश्रेष्ठि का चेहरा फीका पड गया । अत्यन्त दुःखित हृदय से मानो शरणागति स्वीकार कर रहें हो, वैसे अपने पराभव का स्वीकार करके दो हाथ जोडकर पेथडमंत्री को कहते हैं कि ''मंत्रीश्वर पेथडशाह ! अब यह इन्द्रमाला आप ही ग्रहण करो ।'' गिरनार गिरिवर श्री नेमिनाथ भगवान के जयनाद से गूंज उठा । दशों दिशाओं में जयनाद कें तरंगों की भरती आयी । इन्द्रमाला रूपी द्रव्यमाला के साथ तीर्थजय की विजयमाला मंत्रीश्वर के गले में पडी । समस्त वातावरण में वाजिंत्रो के मंगलनाद की सुवास फैल गयी । आज पेथडशाह हर्ष से फूले नहीं समा रहे थे । धर्मरक्षा-तीर्थरक्षा के अमूल्य लाभ को प्राप्त करके कृतकृत्य हो गये । आज उनके हृदय में आनंद नहीं समा रहा था । मंत्रीश्वर ने इन्द्रमाला ग्रहण करके गिरिवर से नीचे उतरते ही धर्मपरायण ऐसे शास्त्रवचनों का स्मरण किया कि, ''धर्मकार्य के प्रारंभ में, व्याधि के विनाश में और वैभव की प्राप्ति में यदि विलंब किया जाये तो वह शुभकारक नहीं होता उसी तरह देवद्रव्य भरने में विलंब करना शुभकारक नहीं है ।''

आयाणं जो भंजइ, पडिवन्नधणं न देइ देवस्स ।
नस्संतं समुविक्खइ, सो विहु परिभमइ संसारे ॥

''देवद्रव्य की आय को जो तोडता है, स्वीकार किया हुआ देवद्रव्य नहीं देता है और यदि देवद्रव्य का नाश होता हो

तो भी जो उसकी उपेक्षा करता है, वह भी संसार में परिभ्रमण करता है ।''

चेइअदव्वविणासे, इसिधाए पवयणस्स उड्डाहे ।
संजइचउत्थभंगे मूलग्गी बोहिलाभस्स ॥

''चैत्य के द्रव्य का विनाश करना, साधु की हत्या करना, शासन की निंदा करना, और साध्वी के ब्रह्मचर्य का भंग करना, यह सब बोधिलाभ के मूल को जलाने में अग्नि के समान है ।''

चेइयदव्वं साहारणंच, जो दुहइ मोहिअमईओ ।
धम्मं सो न विआणइ, अहवा बद्धाउओ नरए ॥

''मूढ मतिवाला जो पुरुष चैत्य के द्रव्य का और साधारण द्रव्य का विनाश करता है, वह धर्म को जानता ही नहीं, अथवा उसने प्रथम नरक का आयुष्य बाँधा है ऐसा समझना ।

इन शास्त्रवचनों का स्मरण होते ही मंत्रीश्वर ने प्रतिज्ञा कि ''जब तक गिरनार की इन्द्रमाला के चढावे का ५६ धडी सोना हाजिर न हो जाए और प्रभु के चरणों में समर्पित न करुँ, तब तक चार आहार का त्याग ।''

सभी संघजन स्तब्ध हो गए । मंत्रीश्वर के सत्त्व को देखकर सभी नतमस्तक हो कर झुक गए । कितनी दृढ प्रतिज्ञा ! कहाँ गढ गिरनार और कहाँ मांडवगढ ? ५६ धडी सोना कब आएगा और कब पेथडमंत्री का पारणा होगा ! सभी एक नज़र से ऊँटनी के आगमन की राह देख रहे थे । पेथड को प्रभु वचनों पर अपार श्रद्धा थी, देवद्रव्य का उधार सिर पर हो तो अन्न का एक दाना भी कैसे खाया जा सकता है ? शासन का राग उनके रक्त की बूँद-बूँद में समाया हुआ था । उनके श्वासोश्वास में शासन की वफादारी की सुवास थी ।

दूसरी तरफ ऊँटनीयाँ पवन के वेग से योजन के अन्तर को मात्र २४ मिनिट जैसे कम समय में पूर्ण करके मालवादेश के मांडवगढ की तरफ जाकर जरुरत प्रमाण सुवर्ण को इकट्ठा करके पुनः गिरनार की तरफ उछलती, कूदती आ रही थी । गिरनार की मालिकी का अधिकार श्वेतांबर जैनों को मिल गया फिर भी जब तक मूल्य न चुकाये तब तक शांति से कैसे बैठ सकते हैं ? पेथडमंत्री को चैन नहीं था । उन्हें १-१ पल, १-१ वर्ष की तरह लग रही थी । पेथडमंत्री सहित सभी यात्रिक जिस तरह

जल के लिए तडपता हुआ चातकपक्षी मेघ के आगमन की राह देखता है, उसी तरह मांडवगढ के मार्ग की तरफ राह देखते हुए बैठे थे ।

तीर्थमाला-इन्द्रमाला के दिन उपवास हुआ । दूसरे दिन भी मध्याह्न का समय बीत गया था । सूर्य का तेज धीरे धीरे कम हो रहा था । संध्या के रंग से नीलगगन में रंगोली भरने का कार्य प्रारंभ हो चुका था । सूर्यास्त को मात्र दो घडी (४८ मिनिट) का समय शेष रहा था । उसी समय मांडवगढ की दिशा से ऊँटनीयों के पाँव की आवाज सभी के कानों तक पहुँची। सूर्य के उदय से जिस तरह सूर्यमुखी पुष्प विकसित होता है उसी तरह पेथडमंत्री ऊँटनीयों के आगमन से आनंदविभोर बन गए। मांडवगढ का मार्ग धूल से घिर चुका था । और देखने ही देखते ऊँटनीयाँ गिरनार की तलहटी में आ गयीं । तुरंत ही ऊँटनीयों के ऊपर से सुवर्ण की थैलियाँ नीचे उतारी गयी और ५६ धडी सुवर्ण तोला गया । सभी को मंत्रीश्वर को पारणा करवाने की तीव्र इच्छा थी । परन्तु सूर्यनारायण को यह मंजूर नहीं था । दो घडी शेष सूर्य ढल चुका था, जिससे दो घडी पहले चौविहार के पच्चक्खाण करनेवाले मंत्रीश्वर के चौविहार उपवास का पच्चक्खाण करने से छट्ठ का तप हुआ । धीरे-धीरे सूर्य अस्त होने की तैयारी में था और संध्या का समय हो गया था ।

दूसरे दिन सुबह वाजिंत्रों के मंगलनाद से चतुर्विध संघ के शीतल सानिध्य में मंत्रीश्वर पेथड के छट्ठ तप का पारणा हुआ और उसी दिन विशाल जनसभा के स्वामीवात्सल्य के लिए भोजन के समारंभ की योजना की गयी ।

श्वेतांबर संप्रदाय का तेज सितारा चमक उठा ।

सत्यमेव जयते

जगमां तीरथ दो वडां, शत्रुंजय गिरनार;
अेक गढ ऋषभ समोसर्या, अेक गढ नेमकुमार.

सोरठदेश की धन्यधरा जगत के सर्वोत्कृष्ट दो गिरिराज को धारण करके स्वयं के सत्व और सामर्थ्य का प्रदर्शन कर रही है । इस सोरठ की शौर्यवंती भूमि ने अनेक ऐतिहासिक प्रसंगों की श्रेणी के कारण गुर्जरदेश को गौरववंत बनाया है ।

तीर्थाधिराज शत्रुंजयगिरि और गरवा गढ गिरनार के शिखर पर जिनालयों की दिव्यध्वजायें लोकोत्तर जिनशासन के गौरव को ऊँचाई पर चढाने के लिए मचल रही हैं ।

करोडों देवताओं से सेवित और पूजित गढ गिरनार बादलों से बातें करते-करते अनेक आँधी और तूफानों के बीच भी अचल खड़ा है ।

चक्रवर्तियों की भूमि हस्तिनापुर नगरी से प्रयाण करके मार्ग में अनेक गाँव और नगरों में विविध शासनप्रभावना के कार्य करते हुए पदयात्रा संघ अनेक तीर्थों की स्पर्शना करते-करते तीर्थाधिराज शत्रुंजय महागिरि की स्पर्शनादि करके आज गरवा गढ गिरनार की गोद में पहुँचा है ।

दूसरे दिन मंगल प्रभात में बालब्रह्मचारी श्री नेमिनिरंजन के चरणों की पूजा करने के मनोरथ सहित संघपति धनशेठ चतुर्विध संघ के साथ गिरिवर की यात्रा प्रारंभ करते हैं । गिरिवर के कदम-कदम पर परमपद की सुवास का अनुभव करते हुए शेठ देवाधिदेव के दरबार में पहुँचते हैं । सभी यात्रिकों के मनमयूर नाच उठे । परमात्म भक्ति की रमझट मची है । संघपति धनशेठ ने सर्वोत्कृष्ट पूजाद्रव्य की सुवास से जिनालय के रंगमंडप को महका दिया है ।

सकल संघ उछलते हुए भावों के साथ द्रव्यपूजा पूर्ण करके तीसरी निसीहि के द्वारा भावपूजा में प्रवेश करता हैं, तब कोई अशुभ कर्मोदय से भावधारा में स्खलना करते हुए अन्य एक संघ ने जिनालय में प्रवेश किया । महाराष्ट्र के मलयपुर से गुजरात के गिरनार पर पहुँचे हुए संघ के संघप्रति वरुणशेठ दिगंबर पंथ के कट्टर अनुयायी थे । द्रव्यपूजा के दौरान धनशेठ ने सकल संघ के साथ श्री नेमिप्रभु को पुष्प की माला एवं कीमती आभूषणादि चढाए थे जो घडी दो-घडी में ही निकाल दिए

गए । वरुणशेठ जोर-जोर से बोलने लगा कि ''बीतरागी को राग के साधनों की क्या जरूरत है ?''

श्वेताम्बरीय धनशेठ सहित सकल संघ के हृदय काँप उठे । ''हमारी पूजा में अंतराय करनेवाले आप कौन हो ?'' तब वरुणशेठ ने प्रतिकार किया, ''हम दिगम्बर इस तीर्थ के मालिक है, यह तीर्थ हमारा ही है, आप तो आज की पैदाईश हो ।''

धनशेठ अत्यन्त क्रोधित हुए, अरे ! इतना बडा झूठ कैसे सहन किया जाय ? गिरनार पर दिगंबरों का अधिकार कब से हुआ ? अरे ! यह तो श्वेतांबरों की दया कहो या करुणा कहो कि आज दिगंबरों को इस गिरनार की यात्रा करने का अवसर मिल रहा है । यह तो श्वेतांबरों का ही उपकार है ।

''प्रभुजी की अंगरचना करने मात्र से प्रभुजी अगर रागी बन जाते हो तो दिगंबरों के द्वारा परमात्मा की रथयात्रा से क्या प्रभुजी वीतरागी रहते हैं ? वीतरागी को रथ में बिठाने के क्यों अरमान रखने ? प्रभुजी अगर अलंकारों से रागी होते हो तो प्रभु की प्रतिमा स्त्रियों के स्पर्श से वीतरागी कही जा सकती हैं ?''

वरुण शेठ के विचारों ने रौद्र स्वरूप लिया और वे बोले ''खबरदार ! यदि आपको दिगंबर पद्धति से प्रभु पूजा करनी हो तो हो सकती है अन्यथा, सजा के लिए सावधान रहो !''

धनशेठ भी 'जय नेमिनाथ' के नाद के साथ कूद पडे । अरे ! प्रभु के शासन के लिए शहीद होने का मजा ही निराला होता है । आज भले ही हमारा मस्तक धड से अलग हो जाय ! हमें कोई चिंता नहीं.''

देखते ही देखते श्री नेमिप्रभु का दरबार रणसंग्राम बनता हुआ देखकर उभयपक्ष के वृद्धों ने इस बात को शांत करने का प्रयत्न किया । परस्पर विचार विमर्श के अंत में निर्णय हुआ कि गिरनार के महाराजा विक्रम की राज्यसभा में उभयपक्ष की बातें रखकर महाराजा के पास से ही गिरनार के अधिकार के विषय में न्याय करना जरूरी है ।

उभयपक्ष को मान्य ऐसी बात से दोनों संघ अलग हुए । एवं सभी यात्रिक तलहटी पर आए । उस समय राज्यसभा बरखास्त हो चुकी थी । फिर भी उभयपक्ष ने राज्यसभा के द्वार खटखटाए महाराजा विक्रम के राजदरबार के द्वार खोले गए। महाराजा ने दोनों पक्षों की शिकायत सुनकर परिस्थिति गंभीर होने का अनुमान लगाया । और दूसरे दिन राज्यसभा में निर्णय करने का ऐलान किया।

संध्या के समय अंधकार का आगमन होते हुए भी धनशेठ की श्रद्धा का दीपक और ज्यादा प्रज्वलित हुआ । गिरनार श्वेतांबरों का ही है और रहेगा ऐसी अचल श्रद्धा होने से धनशेठ ने रात्रि में तीव्र भाव से गिरनार गिरिवर की अधिष्ठायिका श्री अंबिकादेवी की आराधना की । शेठ के तीव्र सत्व और धीरता से संतुष्ट होकर श्री अंबिकादेवी प्रगट हुई । धनशेठ ने कहा ''ओ मैया ! इस गिरनार गिरिवर का मालिक कौन है ? कल राजदरबार में निर्णय के अवसर पर आप पधारेंगे न ?''

श्री अंबिका देवी बोली, ''धीर पुरुष ! सत्य और झूठ तो क्षीर-नीर की तरह अलग हो जाते हैं । आप निश्चिंत रहना ! कल महाराजा विक्रम से कहना कि, हमारे 'सिंद्धाणं बुद्धाणं' सूत्र में गिरनार महातीर्थ का रोज स्मरण किया जाता है जिससे गिरनार पर श्वेतांबरों का ही अधिकार हैं, इस विषय में शंका का कोई स्थान नहीं है ।''

सूर्योदय की सुवर्णकिरणें श्वेतांबर जैनों के सुवर्णकाल के उदय की सूचना दे रही थी । आज धनशेठ के हृदय में श्रद्धा और विश्वास का समन्वय हो चुका था । सभी राज्यसभा में गिरनार महातीर्थ के निर्णय के विषय में उत्सुकता से बैठे थे । महाराजा विक्रम ने प्रवेश किया, राज्यसभा का प्रारंभ होते ही धनशेठ ने अपनी बात शुरु की ''महाराजा ! पूर्वकाल के इतिहास के अनुसार गिरनार तीर्थ अवश्य श्वेतांबरों का होते हुए भी आप आज उस इतिहास के पन्नों को देखे बिना ही बहुत ही सरलता से इस विवाद का अंत ला सकते हो । हम श्वेतांबर नित्य चैत्यवंदन में श्री गिरनार महातीर्थ का स्मरण 'सिद्धाणं बुद्धाणं' सूत्र के आलंबन से करते है । हमारे छोटे-छोटे बच्चें भी कह सकते है कि गिरनार श्वेतांबरों का है, गिरनार को हम रोज चैत्यवंदन में याद करते हैं ।''

इस बात को सुनकर महाराजा विक्रम अत्यंत संतुष्ट हुए और उनके हृदय में यह बात बैठ गयी । फिर भी मात्र आश्वासन के लिए वे वरुण शेठ को पूछते हैं कि, ''आपको कुछ कहना है ?''

वरुणशेठ वास्तविकता को सुनकर दंग रह गया । जबरदस्ती कर सके वैसी परिस्थिति नहीं थी । राजन्याय को शिरोमान्य करना अनिवार्य था । स्वयं के पक्ष के बचाव के लिए प्रस्तुति हुई परन्तु उसमें वरुणशेठ को ही आत्मविश्वास नहीं था । महाराजा विक्रम ने वरुणशेठ की प्रस्तुति को हास्यास्पद बनाकर धनशेठ की बात को मान्य रखने का निमंत्रण दिया ।

अब वरुणशेठ के मन में शंका उत्पन्न हुई कि यदि इनके संघ के प्रत्येक यात्रिक ने यह गाथा याद कर ली होगी तो ? ऐसी शंका से वरुणशेठ धनशेठ की बात को स्वीकार करते हैं, लेकिन एक शरत के साथ । संघ के यात्रिकों के सिवाय किसी

दूसरी व्यक्ति से यह गाथा यदि बुलवायी जाये, तो ही इस गिरनार महातीर्थ पर श्वेतांबरों का अधिकार स्वीकार होगा ।

राजसेवक आसपास के किसी गाँव से एक बालिका को राजदरबार में लेकर आए और सिद्धस्तव अर्थात् सिद्धाणं बुद्धाणं सूत्र बोलने के लिए कहा तब बालिका बोली...

उज्जिंत सेल सिहरे, दिक्खा नाणं निसीहिआ जस्स,
तं धम्म चक्कवट्टीं, अरिट्ठनेमिं नमंसामि.

''उज्जयंतगिरि (गिरनार) के शिखर पर दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण यह तीन कल्याणक हुए है, उन धर्मचक्रवर्ती श्री नेमिनाथ भगवान को मै नमस्कार करता हूँ ।'' इस बालिका के वचन पूर्ण होते ही उस पर पुष्पवृष्टि हुई और गिरनार गिरिवर पर चारों ओर श्वेतांबरों की विजय के हर्षनाद से गिरनार गिरिवर गूँज उठा ।

धनशेठ शासन अधिष्ठायिका श्री अंबिकादेवी का स्मरण करके आनंद विभोर बन गया ।

महाराजा विक्रम ने निर्णय घोषित किया कि.....

''गिरनार महातीर्थ के एक मात्र मालिक श्वेतांबर ही है ।''

तीर्थभक्ति

ऐतिहासिक प्रसंगों की परंपरा से प्रख्यात बना हुआ गढ गिरनार अनेक वादविवादों का सामना करने के लिए आज तक गौरवशाली रहा है । बहते समय के साथ गढ गिरनार के कब्जें और हक के लिए अनेक प्रसंग इतिहास के पन्नें-पन्नें पर लिखे जा चुके हैं ।

गिरनार महातीर्थ पर अनेक पक्ष अपना हक जमाने के लिए प्रयत्न करते थे । उस समय तीर्थभक्ति के लिए शहीद होनेवालों की यह घटना है ।

धामणउली नामक एक गाँव में धार नामक श्रावक रहता था । पूर्वजन्म के कोई प्रचंड पुण्यानुबंधी पुण्य के योग से धनसंपत्ति उसके कदम चूम रही थी । अनेक रिद्धि-सिद्धि का स्वामी बना हुआ धार श्रावक बहुत वैभवशाली होने के बावजूद, जिनेश्वर परमात्मा के शासन का परम भक्त था । उसके हृदय में शासन के प्रति तीव्र अनुराग के कारण उसके पाँचों पुत्रों के खुन में भी शासन प्रेम की धारा बहती थी । पहले किये हुए सत्कार्यों के फल स्वरूप मिले हुए धन वैभव के साथ-साथ उसका धर्मवैभव भी कम नहीं था । शुद्ध श्रावक के संस्कार उसके प्रत्येक श्वास में बह रहे थे । सम्यक्त्वमूल बारह व्रत धारण करके यथाशक्य चुस्त श्रावक जीवन जी रहा था ।

बहती नदी के निर्मल पानी की तरह उसका जीवन व्यतीत हो रहा था । उसमें एक बार श्री गिरनार की अचिन्त्य महिमा की बातें गुरुभगवंत के श्रीमुख से सुनकर उसका मन मोर की तरह नाच उठा । संघ सहित गिरनार की यात्रा करने का उसने निर्णय जाहिर किया । हवा बात फैलाती है, वैसे आसपास के गाँवों में चारो ओर धार श्रावक के संघ की बात फैल गयी । गिरनार के दर्शन की इच्छा रखनेवाले अनेक भावुक आत्माओं का आगमन धामणउली गाँव में होने लगा ।

धामणउली गाँव की प्रजा आज आनंदित हो रही थी । गाँव की गली-गली में हरे तोरण सुशोभित हो रहे थे । धार श्रावक के पाँचों पुत्रों का आनंद भी आसमान को छू रहा था । नगरवासी, स्त्री-पुरुष बालक सब आनंदित थे । शुभदिवस की मंगल घड़ियों मे श्री जिनेश्वर परमात्मा के शासन के प्रति अत्यंत वफादार ऐसे सुश्रावक धार श्रेष्ठि के गिरनार महातीर्थ के संघ का शुभ प्रयाण हुआ । दानधर्म द्वारा गाँव-गाँव प्रभु के शासन की प्रभावना करते हुए, आनंदमय वातावरण के साथ संघ गिरनार

महातीर्थ की तलहटी में प्रवेश करता है और वहाँ पर ही सबके हृदय थम गये ।

गिरनार की तलहटी में पहले ही एक संघ छावणी में पडाव डालकर बैठा था । श्वेताम्बर पक्ष के कट्टर विरोधी दिगंबर पक्ष के अनुयायी ऐसे उन लोगों ने श्वेताम्बर पक्ष के उस संघ को पर्वत पर चढ़ने से रोका । गिरनार पर अपना हक जमाने के दुष्ट विचार के साथ वह पक्ष शस्त्रों सहित युद्ध करने के लिए सज्ज बैठा था । सुश्रावक धार का संघ गिरिवर की यात्रा करने के लिए तत्पर था, लेकिन जैसे ही कदम उठाया सामने पक्ष से आवाज आई, ''खबरदार ! इस गिरिवर पर हमारा संपूर्ण हक है । यहाँ यात्रा करने का आपको कोई अधिकार नहीं'' ।

विरोधी पक्ष की आवाज सुनकर संघ के यात्रिक वही स्तब्ध खडे रहे । ऐसे चुपचाप खडे रहेंगे, तो सामनेवाला पक्ष ज्यादा बलवान हो जायेगा, ऐसा विचार कर संघ के यात्रियों ने सामनेवाले पक्ष का विरोध किया । दोनों पक्षों के बीच शब्दों की आतिशबाजी चली । कोई ठोस निर्णय न होने के कारण संघ के नेताओं ने अन्याय के सामने राजा की मदद लेने का निर्णय किया । लेकिन काले मनवाले उन लोगों ने तो राजा को पहले से ही अपने पक्ष में कर लिया था । विरोधी पक्ष को राजा की पूर्णः सहायता थी । जैसे ही श्वेताम्बर संघ महाराजा के सामने नजराना लेकर न्याय की माँग करता है, उसी समय राजा के न्याय का तराजू विरोधी पक्ष की तरफ झुकता हुआ दिखाई दिया ।

अरे ! यह तो पानी में आग । स्वामी ही जब स्वार्थी बन जाये तो सेवक बेचारा कहाँ जाये ? सुश्रावक धार और उसके साथीदार उद्विग्न हुए । इस सवाल का हल तो लाना ही पड़ेगा । अब तो किसी भी हालत में हम हार नहीं मानेंगे । तीर्थ की संपूर्ण मालिकी होने के बावजूद तीर्थयात्रा का निषेध ! युवानों के हृदय में बसी हुई शासन के प्रति अनुराग की ज्वाला और ज्यादा प्रज्वलित हो उठी । अब तो जान की बाजी लगाकर भी तीर्थ का कब्जा ले लेंगे, ऐसा दृढ़ निश्चय करके सब मरने के लिए तैयार हुए । सबके हृदय में तीर्थभक्ति का कजज्बा उछल रहा था । युद्ध का ऐलान होते ही युवानों ने बाँहें चढा लीं । तीर्थभूमि आज रणभूमि बन चुकी थी । दोनों पक्षों ने गिरिवर के हक के लिए जंग छेडी थी । एक के बाद एक लाश इस तीर्थभूमि की पावन भूमि पर गिरने लगी । खून के लाल रंग से तीर्थभक्ति का इतिहास लिखा जा रहा था ।

विरोधीपक्ष के विराट बल के सामने सुश्रावक धार के संघ की संख्या मामुली होते हुए भी तीर्थप्रेम के कारण शत्रु से लड रहे थे । आज उनको मरने का कोई डर नहीं था । शासन के लिए शहीद होने का सपना आज वे साकार कर रहे थे।

गिरनार गिरिवर के पावन आंगन में आज खून के लाल रंग से रंगोली बन रही थी । श्री जिनेश्वर परमात्मा के शासन के प्रति अत्यंत भक्तिवाले सुश्रावक धार के एक के बाद एक पुत्र पूरे जोश के साथ विरोधी पक्ष का सामना कर रहे थे । एक..... दो..... तीन.... चार..... पाँच.... सुश्रावक धार के एक के बाद एक पाँचों पुत्र मरण को प्राप्त हुए । विरोधी पक्ष ने उन सबका सिर धड से अलग कर दिया । तीर्थरक्षा के तीव्र प्रेम को अंतिम श्वास तक हृदय में बसाकर मौत को गले लगानेवाले वे पाँचों पुत्र उसी क्षेत्र के अधिपति बनने का परम सौभाग्य प्राप्त करते हैं । क्रमशः (१) कालमेघ, (२) मेघनाद (३) भैरव (४) एकपद (५) त्रैलोक्यपद नामक क्षेत्राधिपति बने । जिनशासन के इतिहास के पन्नों पर उनका बलिदान सुवर्ण अक्षरों में लिखा गया है।

तीर्थभक्ति के निमित्त पाँचों पुत्र शहीद होने के बावजूद भी इसमें उनकी हार नहीं थी । उन पाँचों पुत्रों ने गिरिवर के पाँच-पाँच पहाड़ पर विजय प्राप्त करके क्षेत्र का अधिपति कहलाने का ताज सिर पर पहन लिया था ।

सुश्रावक धार रणभूमि बनी हुई तीर्थभूमि पर गिरी हुई खून से लथपथ अपने पाँचों युवान पुत्रों की लाशों को देखकर पुत्रों की मर्दानगी का गौरव प्राप्त कर रहे थे । अभी तक उनके मन की तमन्ना अधुरी ही थी, आज उनके पीछे हटे हुए कदमों में लंबी कूद लगाकर मंजिल पाने का निश्चय था । मन के महल में आनेवाले कल के मीठे मनोहर सपने सजाकर वह तीर्थरक्षा के शिखरों को जीतने के लिए निकलते हैं ।

जिनशासन के चरणों में पाँच-पाँच पुत्रों के जीवनदान करने के बावजूद भी सुश्रावक धार के हृदय में कोई दुःख नहीं था। गिरनार तीर्थ को कब्जें में लेने की इच्छा दिन-ब-दिन बढ़ती ही जा रही थी । पाँच-पाँच पुत्र रत्नों के शहीद होने के बाद धार भटकते हुए कान्यकुब्ज नगर में पहुँचता है । अनजान जगह में गली-गली में घूमते हुए जैन उपाश्रय में आ पहुँचा । पूछताछ करके आचार्य भगवंत का जहाँ पर व्याख्यान चल रहा था, वहाँ सभा के बीच में से निकलकर आचार्य बप्पभट्टसूरि महाराज साहेबजी के पास आकर बैठ जाता है ।

आचार्य भगवंत की अमृतवाणी को थोडी देर सुनने के बाद धार श्रावक बीच में खडे होकर सकल संघ के सामने आचार्य भगवंत को कहते है, ''गिरनार महातीर्थ का कब्जा आज भयजनक बन गया है । दिगंबर पंथ के लोग हक जमाकर बैठे हुए हैं, और श्वेताम्बर पंथ को पाखंडी समझकर गिरिवर पर यात्रा करने की मनाई कर रहे हैं । ऐसे समय मे पाट पर बैठकर धर्म की बातें करने का कोई मतलब नहीं है । पहले इस गिरनार महातीर्थ को कब्जे में लेकर उद्धार करो, फिर इस व्याख्यान

की पाट पर बैठकर धर्मोपदेश देना शोभास्पद रहेगा । इसलिए आज इन शास्त्र की बातों को बाजु में रखकर शस्त्र से सज्ज होने की जरूरत है ।''

सभा में एकाग्र मन से प्रवचन सुन रहे आमराजा भी वृद्ध धार श्रावक के आक्रोश भरे वचनों को सुनकर स्तब्ध बने।

सुरिवर का ऐसा अपमान सहन न होने के कारण आमराजा खड़े हो गये । उस समय परिस्थिति को पहचानने वाले विचक्षण ऐसे आचार्य भगवंत इशारे के द्वारा महाराज को शांत रहने के लिए कहते हैं । धार श्रावक गिरनार गिरिवर की स्थिति का ब्यान करते हुए वचनों के तीरों से सूरिजी के हृदय को तार तार कर रहा था । तीर्थ यात्रा में आनेवाली मुश्किलों का नाश करने के लिऐ वह समस्त समाज और सूरिवर को उत्साहित करता है । अपने हृदय में बसे हुए तीर्थ के प्रति लगाव की एक चिनगारी वह सबके दिल में जलाना चाहता था । पाँच-पाँच पुत्रों की मृत्यु के बाद भी किंचित् मात्र दुःख बताये बगैर मात्र और मात्र तीर्थरक्षा के लिए, हृदय को चीर दे ऐसी धारदार वाणी से सबके दिल में अलग ही असर हुई थी ।

जिनके श्वासोश्वास में शासन बसा है, ऐसे महाशक्तिशाली आचार्य भगवंत और जिनके उपर इसका प्रभाव हुआ, वह आमराजा, श्री गिरनार की विकट स्थिति का वर्णन सुनकर तिलमिला उठते हैं । उनके अंतर के तार तार झनझना उठते हैं । सूरिवर और आमराजा महासंघ यात्रा सहित गिरनार की तरफ प्रयाण करते हैं । प्रचंड सत्व के स्वामी आमराजा भी भीष्मप्रतिज्ञा करते हैं कि, ''जब तक गिरनार मंडन नेमिजिन की दर्शन-पूजा नहीं होगी तब तक अन्नजल का त्याग !'' कहाँ तो कान्पकुब्ज और कहाँ गढ गिरनार ? गाँव-गाँव अनुकंपादान, साधर्मिक भक्ति, जीवदया आदि अनेक कार्यों के साथ शासन प्रभावना पूर्वक संघ आगे बढ़ रहा था ।

कई दिन बीत गए । राजघरानें में जन्मे हुए आमराजा को कभी भूख प्यास की वेदना सहन करने का अवसर आया नहीं था । आज कुदरत उनकी परीक्षा ले रही थी । यह महासंघ स्तंभनतीर्थ पहुँचा । वहाँ मन के मजबूत ऐसे आमराजा के शरीर की शक्ति क्षीण होती गई । आमराजा जीवन-मृत्यु के बीच झूल रहे थे । सूरिवर और सब साथी चिंतातुर हुए लेकिन आमराजा की प्रतिज्ञा तो अखंड थी ।

प्राण जाये पर प्रतिज्ञा में कुछ भी फेरफार न करने का उनका दृढ निश्चय था । समस्त स्तंभनतीर्थ के भावुक संघ यात्री और सूरिजी चिंतातुर बने । अंत में महाशक्तिशाली ऐसे सूरिवरजी ने श्री गिरनार महातीर्थ की अधिष्ठायिका, श्री नेमिनाथ प्रभु

के शासन की अधिष्ठायिका श्री अंबिकादेवी की आराधना करके देवी को साक्षात् प्रगट किया । गिरनार तीर्थ की रक्षा और आमराजा की भीष्मप्रतिज्ञा की बात बताई । शासनदेवी आचार्य भगवंत की बात सुनकर अंतर्धान होती है और पलभर में आकाशवाणी होती है ।

''हे पुण्यवान् ! मैं गिरनार महातीर्थ की अधिष्ठायिका अंबिका देवी हूँ, तेरे सत्व और शौर्य से मैं प्रसन्न हूँ । तीर्थरक्षा की तेरी तमन्ना और तेरे शरीर की दुर्बलता को देखकर, गिरनार के श्री नेमिप्रभु की मूर्ति मैं लेकर आई हूँ । उसके दर्शन-पूजन से तेरी प्रतिज्ञा पूरी होगी ।''

थोडी देर में श्री नेमिजिन की देदीप्यमान प्रतिमा आकाश मार्ग से धरती पर आई । प्रभु के दर्शन से, सूर्य के उदय के साथ कमल खिलता हो वैसे आम राजा के शरीर में नया जोश पैदा हुआ । स्तंभननगर की चारों दिशाओं से लोग आने लगे । सब परमात्मा की भक्ति में मग्न हो गये । आमराजा ने अत्यंत भावुक बनकर प्रभुजी की दर्शन-पूजा की । लेकिन उसके मन में प्रतिज्ञा पूर्ण होने के बारे में शंका न रह जाये, इसलिए शासनदेवी द्वारा पुनः दिव्यवाणी सुनाई देती है, ''हे पुत्र ! इस प्रतिमा के दर्शन-पूजन द्वारा तूने गिरनार गिरिवर के श्री नेमिप्रभु के ही दर्शन-पूजा का लाभ प्राप्त किया है इसलिए तेरी प्रतिज्ञा पुरी हुई है । इसमें जरा भी संशय मत रखना ।

शासन देवी के दिव्यवचनों को मानकर आमराजा ने अतृप्त मन के साथ पारणा किया । उसके शरीर में नया तेज प्रकाशित हुआ । नये जोश और नये जुनून के साथ सब गिरनार गिरिवर की तरफ प्रयाण करते हैं । सूरिजी और राजा गिरनार की दिन प्रतिदिन की परिस्थिति की जानकारी लेते रहे, और सामनेवाला पक्ष ज्यादा बलवान हो रहा है, ऐसे समाचार मिले ।

आमराजा का महासंघ गिरनार गिरिवर की तलहटी में आ पहुँचा । जैसे उनका स्वागत करने के लिए इकट्ठा ना हुए हो, वैसे सामनेवाले पक्ष के ११ महाराजा, विशाल युद्धसेना, आचार्य भगवंत और श्रावक संघ आदि तलहटी में छावणी डालकर ठहरे थे । आमराजा के संघ ने गिरिवर पर चढने हेतु जैसे ही कदम बढाये, सामनेवाले पक्ष से आवाज आयी, ''खबरदार ! इस तीर्थ पर हमारा अधिकार है । एक और कदम आगे बढ़ाया तो आपका मस्तक सिर से अलग कर दिया जायेगा।'' आज तो आमराजा भी पूरी तैयारी के साथ युद्ध लडने को तैयार था, परंतु सूरिवर के मात्र इशारे से आमराजा, ''गुरु आणाए धम्मो'' सूत्र को मानकर शांत हुआ ।

आचार्य बप्पभट्टसूरिजी ने कहा, ''**सर्वधर्म का मूल दया है । जिस धर्म को करने के लिए भयंकर हिंसा करनी पड़े, उस धर्म की क्या कीमत ? धर्म कार्य में हजारों मानवों का संहार अनुचित है** । हम शास्त्रचर्चा द्वारा इस हार-जीत का फैसला करेंगे ।'' श्री जिनेश्वर परमात्मा के प्रति अडग श्रद्धा रखनेवाले सामने पक्ष के आचार्य भगवंत ने सूरिजी के इस उपाय को स्वीकार किया। एक तरफ आमराजा और चुने हुए शिष्यगण के साथ आचार्य बप्पभट्टसूरिजी, दूसरी तरफ ग्यारह-ग्यारह महाराजा और अनेक आचार्य-पंडित आदि श्रावक वर्ग । शस्त्रयुद्ध के स्थान पर आज आमने-सामने शब्दयुद्ध हो रहा था । दोनों पक्षों ने चर्चा का आरंभ किया । दोनों पक्ष अपने-अपने मत सामने जाहिर कर रहे थे । अनेक शक्ती के स्वामी ऐसे सूरिश्वरजी की मदद में माँ सरस्वती ने आकर सामनेवाले पक्ष को मुँह तोड़ जवाब दिया । विरोधी पक्ष के विद्वानों के मुँह तो देखने लायक थे । सूरिजी की महाप्रभावक वाणी से सब आश्चर्यचकित हुए । बहुत दिनों की धर्मचर्चा के अंत में मध्यस्थों द्वारा श्वेतांम्बरों के विजयी होने की घोषणा की गई । विरोधीपक्ष के चेहरे निस्तेज हो गये । तब नम्रता मूर्ति आचार्य बप्पभट्टसूरिजी ने खडे होकर कहा, ''धर्म चर्चा में विजय हमारी होने के बावजूद एक और उपाय है कि, ''दोनों पक्ष शासन देवी अंबिका देवी की आराधना करके प्रत्यक्ष उनके पास निर्णय मांगे । वह जो निर्णय करेंगी, वह सबको मान्य (स्वीकार) रहेगा ।''

पराजय से हताश हुए विरोधीपक्ष की जान में जान आई । विजय की आशा की एक लहर उनको दिखाई दी । दोनों पक्षों ने ऐसा निर्णय किया कि एक-दूसरे के पक्ष में एक-एक कन्या को भेजा जाये । और दोनों कन्यायें जो भी बोलेंगीं, वह सबको स्वीकार करना होगा ।

प्रथम आचार्य बप्पभट्टसूरिजी ने एक प्रभावशाली लडकी को सामने पक्ष के आवास में भेजा । सामने पक्ष के लोगों ने बारह घंटे तक कन्या को मंत्राधिष्ठित करके, बोलने के लिए कहा, तब वह कन्या जैसे गुंगी और बहरी हो गई हो, वैसे स्तब्ध खड़ी रही। फिर दिगंबरपक्षवालों ने आचार्य भगवंत के पास एक कन्या को भेजा और कहा कि, ''यदि आप में शक्ति हो तो आप हमारी कन्या को बुलवाकर दिखाईये ।'' आचार्य बप्पभट्टसूरिजी ने उस कन्या की तरफ स्नेहभरी नजर से आशीर्वाद दिया, तुरंत ही शासन देवी उसके मुँह से स्पष्ट रूप से बोलने लगी कि-

इक्कोवि नमुक्कारो, जिणवर वसहस्स वद्धमाणस्स
संसार सागराओ, तारेइ, नरं व नारिं वा ॥१॥

(श्री जिनेश्वर परमात्मा वर्धमान स्वामी को किया हुआ एक भी नमस्कार इस संसार सागर से पुरुष-स्त्री आदि को तार देता है ।)

उज्जितसेलसिहरे दीक्खा नाणं निसीहिया जस्स
तं धम्म चक्कवट्टिं अरिट्ठनेमिं नमंसामि ॥२॥

(उज्जयंत पर्वत के शिखर पर जिनके दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष कल्याणक हुए हैं, ऐसे धर्मचक्रवर्ती श्री अरिष्टनेमि भगवंत को मैं नमस्कार करती हूँ ।)

ये गाथाएँ सुनकर विचक्षण ऐसे आचार्य भगवंत आदि के चेहरे पर आनंद की लहर छा गई । सामनेवाला पक्ष गाथा के रहस्य तथा अर्थ को समझने के लिए असमर्थ होने से चिंतित हुआ । तभी आचार्य बप्पभट्टसूरिजी ने अत्यंत गंभीरतापूर्वक कहा कि, ''हे राजन् ! हमारे पक्ष की ऐसी मान्यता है, कि स्त्री, पुरुष और नपुंसक हर एक को मोक्ष प्राप्त करने का हक है। जब हमारा विरोधी पक्ष तो स्त्री मुक्ति का स्वीकार करता नहीं । इस बालकन्या के स्वरुप में शासनदेवी ने प्रथम चरण में स्पष्ट कहा है कि ''वर्धमान स्वामी को किया हुआ एक भी नमस्कार स्त्री और पुरुष को तारता है ।'' यह चरण हमारे मत को संपूर्णतः पुष्ट करता है । इसलिए इस तीर्थ के अधिकार के लिए शासनदेवी ने भी मुहर-छाप लगा दी है और इस गिरनार के हक की समस्या का समाधान हो गया है ।''

मध्यस्थों ने भी आचार्य भगवंत के वचनों को सहर्ष स्वीकार किया । और श्वेतांबर पंथ को विजयी घोषित किया । विजयी होने के साथ ही गिरनार गिरिवर की तलहटी श्री नेमिनाथ परमात्मा के जयघोष के साथ गूँज उठी ।

जब प्राण तनसे निकले...

शिशिरऋतु की मंगलप्रभात का वह समय था । वादिवेताल प.पू. शांतिसूरि महाराज साहेब थारापदपुर तरफ विहार करके गाँव में पहुँचे थे । श्रावकजनों के अतिआग्रह से व्याख्यान का आयोजन किया गया था । व्याख्यान के अवसर पर श्री नागिनी नाम की देवी नृत्य करने लगी । तब उस देवी को योग्य स्थान में बिठाने के लिए आचार्य भगवंत द्वारा मंत्रित वासक्षेप डालने पर उस देवी ने योग्य स्थान ग्रहण कर लिया । इस प्रकार जब कभी भी वह देवी नृत्य करने लगती तब उसे अयोग्य स्थान से उठाकर योग्य स्थान पर बिठाने के लिए आचार्य भगवंत वासक्षेप डालते, परंतु एकबार कोई कारणवश विस्मरण होने से आचार्य भगवंत नृत्य करती हुई उस देवी को बिठाने के लिए अथवा अन्यत्र गमन के लिए वासक्षेप डालना भूल गए । निरंतर घुमते हुए इस कालचक्र को कौन रोक सकता है ? उस दिन सुबह का समय व्यतीत हुआ.... मध्याह्नकाल... संध्याकाल भी बीत गया और रात्रि के समय जब आचार्य भगवंत परमात्मध्यान में लीन होने का प्रयत्न कर रहे थे, उसी समय आचार्य भगवंत के शुभ हाथों से वासक्षेप नहीं पड़ने से देवी को सुबह से ही हवा में आधार बिना खड़ा रहना पडा था । इसलिए आचार्यभगवंत को उपालंभ (ठपका) देने के लिए वह उपाश्रय में प्रवेश करती हैं ।

परमात्म ध्यान में लीन होकर आंतरप्रकाश को पाने के लिए प्रयत्न कर रहे आचार्य भगवंत की साधना के स्थान पर अचानक दिव्यप्रकाश का पूंज प्रवेश करता है । इस दिव्यप्रकाश के पूंज के साथ-साथ अत्यंत रुपवान आकृति को प्रवेश करते हुए देखकर आचार्यभगवंत प्रवर्तक मुनि को पूछते हैं, हे मुनिवर ! क्या यहाँ पर किसी रमणी का प्रवेश हुआ है ? तब महात्मा कहते हैं कि, हे गुरुदेव ! मैं नहीं जानता । उस समय अत्यंत देदीप्यमान स्वरूपवाली वह देवी कहती है कि आप कृपालु द्वारा वासक्षेप नहीं पडने से इस तरह ऊँचे लटकते हुए मेरे चरणकमल में अत्यंत पीडा हो रही है । आप जैसे विशिष्ट श्रुतज्ञानी को भी विस्मरण हुआ और मुझपर वासक्षेप डालना चूक गए ! इस लक्षण से आप कृपालु का आयुष्य अब छ महीने से ज्यादा नहीं है । ऐसा मुझे मेरे ज्ञानबल से स्पष्ट समझ में आ रहा है । इसलिए महागीतार्थ ऐसे आपश्री का, समस्त गच्छ की भावि व्यवस्था कोई योग्य आत्मा को सोंपकर, आत्मसाधना में लीन होने का अवसर आ चुका है । यह निवेदन करने के लिए आज मैं यहाँ उपस्थित हुई हूँ । ऐसे दिव्यवचन बोलकर वह दिव्याकृति अंतर्ध्यान होती है ।

दूसरे दिन सुबह परम पूज्य आचार्य भगवंत ने अपने गच्छ के महात्माओं को इकट्ठा किया । साथ में सकल श्री संघ

को भी इकट्ठा किया । सबके साथ मिलकर भविष्य की सुयोग्य व्यवस्था के लिए विचार विमर्श करने के बाद फलश्रुति के रुप में बत्तीस सुयोग्य पात्रों में से तीन विद्वान मुनिभगवंतों को पंचपरमेष्ठि के तृतीय अर्थात् आचार्यपद पर स्थापन करने में आता है । ये तीन महात्मा १. प.पू. आचार्य वीरसूरि, २. प.पू. आचार्य शालिभद्रसूरि तथा ३. प.पू. आचार्य सर्वदेवसूरि महाराज साहेब जैसे साक्षात् रत्नत्रयी न हो ! उस तरह सद्व्रत से अलंकृत और असाधारण तेज से दीपने लगे थे ।

बरसों तक प्रभु के शासन की अद्भुत सेवा द्वारा पूज्य आचार्य श्री शांतिसूरि महाराज साहेब ने प्रचंड पुण्योपार्जन किया था । अब फलस्वरूप जीवनसंध्या के सर्वोत्कृष्ट काल में आत्मसाधना में लीन होने के लिए तडप रहे थे । पूज्यश्री के विचाररूपी रत्नाकर में से एक के बाद एक रत्न बाहर आ रहे थे । उनमें से एक विचार दृढ हुआ कि अनंत तीर्थंकर परमात्मा जिस क्षेत्र से सिद्धपद को साध चुके हैं, भविष्य में साधनेवाले हैं और वर्तमान चोवीशी के बाइसवें तीर्थंकर बालब्रह्मचारी श्री नेमिनाथ के दीक्षा-केवलज्ञान और मोक्षकल्याणक जिस पावनभूमि पर हुए हैं, ऐसी साधकों की साधनाभूमि महामहिमावंत श्री गिरनार महातीर्थ में जाकर अंतिमसाधना करूँ ।

आचार्य भगवंत अनंत तीर्थंकरों के कल्याणकों से पवित्र हुए श्री गिरनार की भूमि की स्पर्शना करने के मनोरथ के साथ रैवतीगिरि के मार्ग पर प्रयाण करते हैं । यश नामक सुश्रावक के सोढ नामक सुपुत्र को भी साथ में रखते हैं । छोटे-छोटे गाँवो की भूमि को अपनी चरणरज द्वारा पवित्र करते हुए उग्रविहार द्वारा आचार्यश्री बहुत ही कम समय में रैवताचल की शीतल छाया में पहुँच गए । गिरिआरोहण करके, नेमिप्रभु के दर्शन द्वारा नयनों को पावन किया । श्री नेमिनाथ परमात्मा का ध्यान धरके धर्मध्यान रूपी अग्नि की ज्वाला से भवभ्रमणरुप विष लता को भस्मीभूत करने का प्रबल पुरुषार्थ शुरु किया और भूख, प्यास, निद्रा आदि से अलिप्त बनकर परमसमाधि के शिखरों को पार करते हुए पच्चीस दिनों के अनशन के अंत में विक्रम संवत् १०९६ के ज्येष्ठ महीने की शुक्ल नवमी को मंगलवार के दिन कृतिका नक्षत्र में महाशासनप्रभावक वादिवेताल श्री शांतिसूरि महाराज साहेब ने गिरनार मंडन श्री नेमिनाथप्रभु के परम सान्निध्य में परमपद की ओर प्रयाण किया था ।

गिरनार की गौरवयात्रा

गिरनार महातीर्थ की तलहटी में श्री आदिनाथ भगवान के जिनालय में दर्शन कर गिरनार गिरिवर के प्रवेश द्वार के अंदर बायें हाथ की तरफ चढान में हनुमान का मंदिर आता है । दायें हाथ की तरफ पुलिसचौकी के पास बालब्रह्मचारी श्री नेमिनाथ भगवान के चरण पादुका की देवकुलिका (देरी) आती है । वह विशाश्रीमाली श्रावक लक्ष्मीचंद प्रागजी ने बंधवायी थी । उसमें श्री नेमिप्रभु की पूर्वाभिमुख चरणपादुका और शासन तथा तीर्थ की अधिष्ठायिका श्री अंबिकादेवी की प्रतिमा पबासण की दीवार में है ।

गिरनार महातीर्थ की यात्रा के लिए पधारे हुए सभी भाविकजनों को यात्रा प्रारंभ करने से पहले इस देवकुलिका के दर्शन अवश्य करके अपनी यात्रा निर्विघ्नतया परिपूर्ण हो इस भावना से शासन और तीर्थ के अधिष्ठायिका को अवश्य प्रार्थना करनी चाहिए।

गिरनार की यात्रा में सुगमता के लिए वि.सं. १२१२ में अंबड श्रावक ने सुव्यवस्थित सीढियाँ बनवायी । उसके बाद समय-समय पर उसके उद्धार करवाने के लेख भी मिलते हैं ।

इस देवकुलिका के दर्शन करके आगे १५ सीढियाँ चलने के बाद डोलीवालों का स्थान आता है । वहाँ से आगे बढते हुए लगभग ८५ सीढियों के पास पाँच पांडवों की देवकुलिका आती है, जिन में से चार देवकुलिका बायी तरफ और एक देवकुलिका दायीं तरफ थी । वर्तमान में उनके पुराने स्थापत्य देखने को मिलते हैं । आगे २०० सीढियों के पास चुनादेरी अथवा तपसी प्याऊ का स्थान आता है । आगे ५०० सीढियों के पास दायीं तरफ छोडीया प्याऊ का स्थान आता है, जहाँ अब विश्राम के लिए नया स्थान बनवाया गया है । वहाँ से आगे जाते हुए बायीं तरफ एक रायण वृक्ष आता है, जहाँ पानी की प्याऊ है, ८०० सीढियों पर खोडियार माँ का स्थान आता है, आगे लगभग ११५० सीढियों के पास बायीं तरफ जटाशंकर महादेव की देवकुलिका आती है । वहाँ से जटाशंकर महादेव के स्थान पर जाने के लिए रास्ता है । १२०० सीढियों के बायीं ओर एक नया विश्रामस्थान बनवाया गया है । आगे १५०० सीढियों का स्थान धोंलीदेरी के नाम से पहचाना जाता है वहाँ पर भी विश्राम के लिए नया स्थान बनवाया गया है । आगे लगभग १९५० सीढियों का स्थान कालीदेरी के नाम से पहचाना जता है । वहाँ भी विश्राम के लिए नया स्थान बनवाया गया है । यहाँ जो पुराना मकान है, उस पर आज भी 'धनीपरब' की तख्ती देखने को मिलती

है। आगे २००० सीढियों के पास बायीं ओर कच्चे रस्ते पर आगे बढते हुए 'वेलनाथ बापु की समाधि' का स्थान आता है । कोई साहसी हो तो उसे उस स्थान से पहाड के मार्ग से सहसावन की तरफ जाने का छोटा रास्ता मिल सकता है । २००० सीढियों से आगे जाते हुए लगभग २२०० सीढियों के पास 'भरथरी की गुफा' का स्थान आता है । २३०० सीढियों के पास माली प्याऊ आती है जहाँ राममंदिर है और प्याऊ के पास बायें हाथ की तरफ एक पत्थर में वि.सं. १२२२ श्री श्रीमालज्ञातीय महं श्री राणिना सुत महं श्री अंबाकेन पट्टा कारिता । ऐसा लेख देखने के लिए मिलता है । यहाँ नजदीक में मीठे और शीतल जल का एक कुंड भी है । वहाँ पर लेख में वि.सं. १२४४ में श्री प्रभानंदसूरि महाराज साहेब के उपदेश से यह कुंड बंधवाया गया है ऐसा उल्लेख है ।

इस मंदिर से आगे थोडे कठिन चढान के बाद लगभग २४५० सीढियों के पास 'काउस्सग्गीया का पत्थर' तथा प्राचीन 'हाथी पहाण' आता है । वैसे तो उस पहाड पर फिसलने का भय होने से अधिकृत व्यक्तियों के द्वारा अभी वहाँ पर सिमेन्ट क्रोंक्रीट का माल डालने के कारण वे पत्थर संपूर्णतया ढक गये हैं । वहाँ से आगे २६०० सीढियों के पास 'सती राणकदेवी का पत्थर' आता है और २६५० सीढियों के पास पहाड की एक दीवार पर निम्नोक्त लेख आज भी देखने को मिलता है । स्ववास्ति श्री संवत १६८३ वर्षे कार्तिक वदी ६ सोमे श्री गिरनारनी पूर्वनी पाजनो उद्धार श्री दीवना संघे पुरुषा निमित्त श्रीमाल ज्ञातीय मां सिंघजी मेघजीए उद्धार कराव्यो ।

वहाँ से थोडी सीधी सीढियाँ चढकर आगे बढते हुए लगभग २८२० सीढियों के पास दायीं ओर लोहे की जालीवाली एक देवकुलिका में जिनेश्वर परमात्मा की मूर्तियाँ खोदी हुई आज भी देखने को मिलती हैं । वहाँ से आगे २९०० सीढियों के पास सफेद कुंड (धोळो कुंड) आता है । आगे ३१०० सीढियों के पास बायीं ओर की दीवार के एक झरोखें में खोडीयार का स्थान आता है और ३२०० सीढियों के पास 'खबूतरी' अथवा 'कबूतरी खाण' नामक स्थान में काले पत्थर में अनेक कोटर दिखायी देते हैं । लगभग ३४०० सीढियों पर प्याऊ को छोडकर आगे बढते हुए 'सुवावडी माता का स्थान' नामक स्थान आता है। लगभग ३५५० सीढियाँ पंचेश्वरी का स्थान के नाम से पहचाना जाता है । अभी वर्तमान में 'जय संतोषीमां', 'भारत माता का मंदिर', 'खोडीयार माँ का मंदिर', 'वरुडी माँ का मंदिर', 'महाकाली का मंदिर' तथा 'कालिका माँ का मंदिर' के नाम से देवकुलिका आती है । वहाँ से आगे ३८०० सीढियों के बाद उपरकोट के किल्ले का दरवाजा आता है जिसे देवकोट भी कहा जाता है । उस दरवाजे पर नरशी केशवजी ने मंज़िल बंधवायी थी । जहाँ अभी वनसंरक्षण विभाग की ऑफीस देखने में आती है । इस द्वार से अंदर प्रवेश होते ही अनेक जिनालयों की हारमाला का प्रारंभ होता है ।

श्री रैवतगिरि गिरिराज के गौरववंत जिनालय आदि

रैवतगिरि महातीर्थ के पर्वत पर आए हुए जिनालयों के निर्माण में विशिष्ट कार्यकुशलता के दर्शन होते हैं। शिल्पकला के सौंदर्य की विविधता के कारण प्रत्येक जिनमंदिर अपना विशिष्ट व्यक्तित्व धारण करता है। आबु-देलवाडा-राणकपुर-जेसलमेर आदि जिनालयों की कलाकृति और बारीक-बारीक नक्शी की याद दिलाए ऐसी विशिष्ट कलाकृति इस गिरनार महातीर्थ के जिनालयों में देखने को मिलती है। मनोहर और नयनरम्य ऐसे जिनालयों की जिनप्रतिमा और कला कुशलता को निहारते हुए तृप्ति नहीं होती।

(१) श्री नेमिनाथजी की टूंक :

इस किल्ले के मुख्य द्वार से अंदर प्रवेश करते हुए बायी ओर श्री हनुमान की तथा दायीं ओर कालभैरव की देवकुलिका आती है। वहाँ से १५-२० कदम आगे बायी ओर श्री नेमिनाथजी की टूंक में जाने का मुख्य द्वार आता है, जहाँ 'शेठश्री देवचंद लक्ष्मीचंदनी पेढी गिरनार तीर्थ' ऐसा लिखित बोर्ड लगाया गया है। इस मुख्य द्वार से अंदर प्रवेश करते हुए बायीं और दायीं ओर पूजारी-चौकीदार-मेनेजर आदि कर्मचारियों के रहने के लिए कमरे हैं। वहाँ से आगे बायीं ओर पानी की प्याऊ और ऊपर-नीचे यात्रिकों के विश्राम के लिए धर्मशाला के कमरे बनवाये गये हैं। सामने की तरफ यात्रिकों के लिए शौचालय की व्यवस्था भी रखी गयी है। दायी तरफ शेठ देवचंद लक्ष्मीचंद पेढी की ऑफिस आती है। आगे बढते हुए दायीं तरफ मुडकर वापस बायीं ओर मुडने पर बायें हाथ पर यात्रिक भाई-बहनों के लिए स्नानगृह बनवाया गया है। वहाँ से आगे बढते हुए स्नान के लिए गरम पानी बनाने का कमरा है। तथा दायीं ओर पीने के लिए उबले हुए पानी का कमरा है। वहाँ से आगे गिरनार मंडन श्री नेमिनाथ परमात्मा के मुख्य जिनालय के दक्षिण दिशा तरफ का प्रवेश द्वार आता है। उस द्वार से प्रवेश करते ही श्री नेमिनाथ भगवान के मुख्य जिनालय का प्रांगण प्रारंभ होता है। यह चौक १३० फूट चौडा और १७० फुट लम्बा है, जिसमें मुख्य जिनालय की प्रदक्षिणा भूमि में ८४ देवकुलिका है।

जिनालय के दक्षिण द्वार के बाहर ही दायीं ओर श्री अंबिकादेवी की देवकुलिका है।

श्री अंबिका देवी की देवकुलिका : गिरनार महातीर्थ तथा श्री नेमिनाथ भगवान के शासन की अधिष्ठायिका श्री अंबिका देवी

की सुंदर मूर्ति है । उसका अचिन्त्य प्रभाव है । जिनालय में प्रवेश करने से पहले उसके दर्शन अवश्य करने चाहिए।

(i) श्री नेमिनाथ जिनालय : श्री नेमिनाथ भगवान (६१ इंच)

श्री नेमिनाथ जिनालय के प्रागंण में प्रवेश करते ही श्री नेमिनाथ भगवान के विशाल एवं भव्य गगनचुंबी शिखरबंधी जिनालय के दर्शन होते हैं । अत्यन्त आह्लाददायक इस जिनालय के दक्षिण द्वार से प्रवेश करते ही ४१.६ फुट चौडा और ४४.६ फुट लंबा रंगमंडप आता है । उसके मुख्य गर्भगृह में गिरनार गिरिभूषण श्री नेमिनाथ परमात्मा की मनहरणी श्यामवर्णी नयनरम्य प्रतिमा बिराजमान है । उसके दर्शन करते ही गिरिवर आरोहण की थकान के साथ-साथ भवभ्रमण की थकान भी उतर जाती है ।

मूलनायक श्री नेमिनाथ परमात्मा की यह प्रतिमा पूरे विश्व में वर्तमान में सबसे प्राचीनतम प्रतिमा है । यह प्रतिमा अतीत चोवीशी के तीसरे सागर नामक तीर्थंकर के समय में पांचवें देवलोक के ब्रह्मेन्द्र के द्वारा बनवायी गयी थी । यह प्रतिमा १६५७५० वर्ष न्यून २० कोडाकोडी सागरोपम वर्ष प्राचीन है । श्री नेमिनाथ भगवान के निर्वाण के २००० वर्ष के बाद काश्मीर देश से संघ लेकर आए हुए श्री रत्नसार नामक श्रावक ने शासन अधिष्ठायिका श्री अंबिका देवी की आराधना करके उनकी सहायता से यह प्रतिमा प्राप्त कर, प्रतिष्ठा करवायी थी । अरबों वर्ष तक पाँचवें देवलोक में तथा श्री नेमिनाथ प्रभु की हाजरी में द्वारिका नगरी में श्री कृष्ण के जिनालय में यह प्रतिमा पूजी गयी है । यह प्रतिमा रत्नसार श्रावक के द्वारा प्रतिष्ठित होने के बाद १,०३,२५० वर्ष तक इसी स्थान पर पूजी जायेगी, ऐसे श्री नेमिप्रभु के वचन होने से पाँचवें आरे के अंत तक यह प्रतिमा यहीं पूजी जायेगी। बाद में शासन देवी अंबिका के द्वारा यह प्रतिमा पाताल लोक में ले जाकर पूजी जायेगी । इस तरह यह प्रतिमा तीनों लोक में पूजी जायेगी । लगभग ८४,७८६ वर्षों से यह प्रतिमा इसी स्थान पर बिराजमान है । आज तक इस जिनालय के अनेक जीर्णोद्धार हुए हैं ।

मूलनायक की प्रदक्षिणा भूमि तथा रंगमंडप में तीर्थंकर परमात्मा की प्रतिमायें तथा यक्ष-यक्षिणी एवं गुरु भगवंतों की प्रतिमायें बिराजमान हैं । इस रंगमंडप में आगे २१ फुट चौडा और ३८ फुट लम्बा दूसरा रंगमंडप आता है, जिसके मध्य मे गणधर भगवंतों की लगभग ८४० चरण पादुका की जोड अलग-अलग दो पबासण पर स्थापित की गयी हैं । इनकी प्रतिष्ठा वि.सं. १६९४ चैत्र वद बीज के दिन की गयी है । आस-पास तीर्थंकर परमात्मा की प्रतिमायें बिराजमान की गयी हैं । इस जिनालय

के बाहर प्रदक्षिणा भूमि में पश्चिम दिशा से शुरु करते हुए वि.सं. १२८७ में प्रतिष्ठा किए हुए नंदीश्वर द्वीप का पट, जिनप्रतिमायें, पद्मावती की मूर्ति, सम्मेतशिखरजी तीर्थ का पट, शत्रुंजय महातीर्थ का पट, श्री नेमिनाथ जीवन चरित्र का पट, श्री महावीर प्रभु की पाटपरंपरा की चरण पादुका, जिनशासन के विविध अधिष्ठायक देव-देवी की प्रतिमा, शासन देवी अंबिका की देवकुलिका, श्री नेमिनाथ तथा श्री महावीर प्रभु की चरण पादुका, श्री विजयानंद सूरि (पू. आत्मारामजी) महाराज की प्रतिमा आदि स्थापित की गयी है ।

प्रदक्षिणा भूमि कें एक कमरे में श्री आदिनाथ भगवान, साध्वी राजीमतीश्री आदि की चरण पादुका तथा गिरनार तीर्थ का जीर्णोद्धार करनेवाले प.पू. आ. नीतिसूरि महाराज की प्रतिमा बिराजमान है । उसी कमरे में एक भूगर्भ में मूलनायक के रूप में संप्रतिकालीन, प्रगट प्रभावक अत्यन्त नयनरम्य श्री अमिझरा पार्श्वनाथ भगवान की ६१ इंच की श्वेतवर्णी प्रतिमा बिराजमान है । प्रभुजी की मुखमुद्रा निहारते हुए ध्यानमग्न बन जाते हैं । प्रभुजी के हाथ के नाखून की अत्यन्त नाजुक कारीगरी दर्शनार्थियों के मन को हर लेती है ।

(ii) जगमाल गोरधन का जिनालय : [श्री आदिनाथ भगवान - ३१ इंच] श्री नेमिनाथ भगवान के मुख्य जिनालय के ठीक पीछे श्री आदिनाथ भगवान का जिनालय है । इस जिनालय की प्रतिष्ठा पोरवाड ज्ञातीय श्री जगमाल गोरधन द्वारा आ. विजयजिनेन्द्रसूरि महाराज साहेब की पावन निश्रा में वि.सं. १८४८ वैशाख वद - ६ शुक्रवार के दिन करवायी गयी थी । श्री जगमाल गोरधन श्री गिरनारजी तीर्थ पर जिनालय के मुनिम का कर्तव्य निभाकर जिनालयों के संरक्षण का कार्य करते थे । उनके नाम पर जूनागढ़ शहर के उपरकोट के पास के चौक का नाम जगमाल चौक रखा गया था ।

श्री नेमिनाथजी टूंक की प्रदक्षिणा भूमि से उत्तर दिशा की तरफ के द्वार से बाहर निकलते हुए अन्य टूंक के जिनालयों में जाने का मार्ग आता है । उसमें सर्व प्रथम काले पाषाण की ऊँची-ऊँची सीढियाँ उतरते हुए बायीं तरफ मेरकवशी की टूंक आती है ।

(२) मेरकवशी की टूंक :

मेरकवशी की टूंक के मुख्य जिनालय में प्रवेश करने से पहले दायें हाथ की तरफ 'पंचमेरु' का जिनालय आता है ।

(i) पंचमेरु का जिनालय : [श्री ऋषभदेव भगवान - ९ इंच]

इस पंचमेरु जिनालय की रचना अत्यन्त रमणीय है । इसमें चार तरफ के चार कोने में धातकी खंड के दो मेरु और पुष्करार्धद्वीप के दो मेरु तथा मध्य में जंबूद्वीप का एक मेरु इस तरह पांच मेरूपर्वत की स्थापना की गयी है । जिसमें प्रत्येक मेरु पर चतुर्मुखी प्रतिमायें पधरायी गयी हैं, जिनकी प्रतिष्ठा वि.सं. १८५९ में की गयी हैं ऐसा लेख है ।

(ii) अदबदजी का जिनालय : [ऋषभदेव भगवान - १३८ इंच]

पंचमेरु के जिनालय से बाहर निकलकर मेरकवशी के मुख्य जिनालय में प्रवेश करने से पहले बायें हाथ पर श्री ऋषभदेव भगवान की पद्मासन मुद्रा में बिराजित महाकायप्रतिमा को देखते ही शत्रुंजय गिरिराज की नव टूंक में बिराजमान अदबदजी दादा का स्मरण होने से इस जिनालय को भी अदबदजी का जिनालय कहा जाता है । यह प्रतिमा श्यामवर्ण के पाषाण से बनी है और इस पर श्वेतवर्ण का लेप किया गया है । अजैन इस प्रतिमा को भीमपुत्र घटोत्कच अथवा घटीघटुको के नाम से पहचानते हैं । इस मूर्ति की बैठक में आगे २४ तीर्थंकर परमात्मा की मूर्तिवाला वि.सं. १४६८ में प्रतिष्ठा के एक लेखयुक्त पीलापाषाण है ।

(iii) मेरकवशी का मुख्य जिनालय : [सहस्त्रफणा पार्श्वनाथ भगवान - २९ इंच]

इस जिनालय के मुख्यद्वार में प्रवेश करते ही छत में विविध कलाकृति युक्त बारीक कारीगरी आश्चर्यकारी लगती है । घुम्मट की कारीगरी देखते ही देलवाडा के विमलवसही और लूणवसही के स्थापत्यों की याद ताजी हो जाती है । इस बावनजिनालय के मूलनायक श्री सहस्त्रफणा पार्श्वनाथ भगवान है, जिनकी प्रतिष्ठा वि.सं. १८५९ में प.पू. आ. जिनेन्द्रसूरि महाराज साहेब ने करवायी । इस बावनजिनालय की प्रदक्षिणा भूमि में बायीं ओर से घुमने पर पीले पत्थर में वि.सं. १४४२ में खुदवाई हुई चौवीश तीर्थंकरों की मूर्तियोंवाला अष्टापदजी का पट है । आगे मध्य भाग में जो बडी देवकुलिका आती है, उसमें अष्टापदजी का जिनालय बनाया गया है । जिसमें चत्तारी-अट्ठ-दस-दोय इस तरह चार दिशा में क्रमशः ४-८-१०-२ प्रतिमाजी पधराकर अष्टापद की रचना की गयी है । वहाँ से आगे मूलनायक के ठीक पीछे की देवकुलिका में श्री महावीर स्वामी बिराजमान हैं । वहाँ से उत्तर दिशा की तरफ आगे बढते हुए प्रत्येक देवकुलिका के आगे की चौक की छत में अत्यन्त मनोहार कारीगरी मन को खुशकारक बनती है । आगे उत्तरदिशा की तरफ, मध्य में स्थित बडी देवकुलिका में श्री शांतिनाथ भगवान की चतुर्मुखी प्रतिमाजी बिराजमान

है ।

इस जिनालय के मुख्य द्वार से बाहर निकलकर बायी तरफ मुडते ही सगराम सोनी की टूंक में जाने का रास्ता आता है तथा सामने की दीवार के पीछे नया कुंड हैं ।

(३) सगराम सोनी की टूंक : [श्री सहस्त्रफणा पार्श्वनाथ भगवान - २९ इंच]

मेरकवशी की टूंक से बाहर निकलकर उत्तरदिशा के द्वार से सगरामसोनी की टूंक में प्रवेश होता है । इस बावनजिनालय के मुख्य जिनालय में दो मंजिलवाला अत्यन्त मनोहर रंगमंडप है, जिसमें पूजादि अनुष्ठान के दौरान ऊपर के भाग में बहनों की बैठने के लिए सुंदर व्यवस्था की गयी है । इस रंगमंडप से मूलनायक के गर्भगृह में प्रवेश करते ही सामने श्री सहस्त्रफणा पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा बिराजमान है जिसकी प्रतिष्ठा वि.सं. १८५९ जेठ सुद ७ गुरुवार के दिन आ. जिनेन्द्रसूरि महाराज साहेब ने करवायी । अन्य जिनालयों के गर्भगृह की ऊँचाई की अपेक्षा से इस जिनालय के गर्भगृह की अंदर की ऊँचाई कुछ विशेष है । इस गर्भगृह के छत की ऊँचाई ३५ से ४० फुट ऊँची है । गिरनार के जिनालयों में इस जिनालय का शिखर सबसे ऊँचा है ।

सगराम सोनी अथवा संग्राम सोनी के नाम से पहचाना जाता यह जिनालय हकीकत में समरसिंह मालदे के द्वारा उद्धार करवाकर पूरी तरह से नया ही निर्माण किया गया है ऐसा कुछ विद्वानों ने वास्तविक प्रमाण दर्शाया है ।

इस जिनालय की प्रदक्षिणा भूमि में उत्तरदिशा की तरफ के द्वार से बाहर निकलते ही कुमारपाल की टूंक में जाने का रास्ता आता है । इस मार्ग की दायीं ओर डाक्टर कुंड तथा गीरधर कुंड आता है ।

(४) कुमारपाल की टूंक : [श्री अभिनंदन स्वामी - २४ इंच]

कुमारपाल की टूंक में प्रवेश करते ही मुख्य जिनालय के चारों ओर बहुत बडा प्रांगण दिखता है । इस प्रांगण से जिनालय में प्रवेश करने पर एक विशाल रंगमंडप आता है जिसमें आगे एक दूसरा रंगमंडप आता है । इस जिनालय के मूलनायक श्री अभिनंदन स्वामी हैं । इनकी प्रतिष्ठा वि.सं. १८७५ वैशाख सुद ७ शनिवार के दिन आ. जिनेन्द्रसूरी महाराज साहेब ने करवायी थी । इस जिनालय के उत्तर दिशा की तरफ के प्रांगण में एक देडकी वाव नामक वाव (बावडी) है । पहले जीर्णोद्धार के वक्त

रंगमंडप आदि स्थानों की टूटी हुई पूतलियों को निकालकर इस वाव के आसपास रखा गया था ।

उत्तरदिशा के तरफ की खिडकी से बाहर निकलने ही भीमकुंड आता है ।

भीमकुंड : यह भीमकुंड बहुत विशाल है . यह लगभग ७० फुट लंबा और ५० फुट चौडा है । यह कुंड १५ वें शतक में बना हो, ऐसा लगता है । ग्रीष्मऋतु की सख्त गर्मी में भी इस कुंड का पानी शीतल रहता है । इस कुंड की एक दीवार के एक पाषाण में श्री जिनप्रतिमा तथा हाथ जोडकर खड़े हुए श्रावक-श्राविकाओं की प्रतिमा खोदी हुई दिखाई देती हैं।

पश्चिम दिशा की तरफ कुंड के किनारे से आगे बढते हुए, उत्तराभिमुख नीचे उतरने की सीढियाँ आती हैं । ये सीढियाँ पूरी होते ही नागीमाता की देरी नामक एक देवकुलिका आती है । जिसमें सामने ही नीचे के भाग में एक पाषाण का पिंड दिखता है । तथा बायें हाथ की दीवार के झरोखें में श्री नेमिनाथ परमात्मा तथा दायें हाथ की दीवार के झरोखें में श्री नेमिप्रभु के शासन अधिष्ठायिका अंबिका देवी की मूर्ति बिराजमान है । इस देवकुलिका के चौक की छत के ऊपर अधुरे घुम्मट को देखकर, इस देवकुलिका के निर्माण का कार्य किसी कारणवश अधूरा रह गया है, ऐसा लगता है । वहाँ से आगे श्री चन्द्रप्रभ स्वामी के जिनालय तक जाने का कच्चा रास्ता आता है ।

(५) श्री चन्द्रप्रभस्वामी का जिनालय : [श्री चन्द्रप्रभस्वामी - १६ इंच]

श्री चन्द्रप्रभस्वामी का यह जिनालय एकांत में आया है । इस जिनालय में श्री चन्द्रप्रभस्वामी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा वि.सं. १७०१ में हुई । इस जिनालय की छत अनेक कलाकृतियों से सुशोभित है । जिसमें चारों तरफ रंगीन पूतलियाँ स्थापित की गयी हैं ।

इस जिनालय की उत्तरदिशा से ३०-३५ सीढियाँ नीचे उतरते ही गजपद कुंड आता है ।

''स्पृष्ट्वा शत्रुंजयं तीर्थं नत्वा रैवतकाचलम्
स्नात्वा गजपदे कुंडे पुनर्जन्म न विद्यते''

गजपद कुंड : श्री शत्रुंजय तीर्थ की स्पर्शना करके, श्री रैवतगिरि को नमस्कार करके, गजपद कुंड में स्नान करनेवाले को पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता है ।

यह गजपद कुंड, ‘गजेन्द्रपद कुंड’ तथा ‘हाथी पादुका कुंड’ के नाम से भी पहचाना जाता है । इस कुंड का उल्लेख १३ से १५वीं शतक तक रचे गए गिरनार संबंधी लगभग सभी जैन साहित्य में मिलता है । इसके उपरांत ‘स्कन्दपुराण’ अंतर्गत ‘प्रभासखंड’ में भी इसका उल्लेख मिलता है । इस कुंड के एक स्तंभ में जिनप्रतिमा खोदी हुई है ।

श्री शत्रुंजय माहात्म्य के अनुसार जब श्री भरतचक्रवर्ती और गणधरभगवंत आदि प्रतिष्ठा के लिए गिरनार आये, तब श्री नेमिजिन प्रासाद की प्रतिष्ठा के लिए इन्द्र महाराजा भी ऐरावत हाथी पर आरूढ होकर आए । उस समय प्रभु के स्नात्राभिषेक के लिए ऐरावत हाथी के द्वार भूमि पर एक पाँव दबवाकर कुंड बनाया गया था । जिसमें तीनों जगत की विशिष्ट नदियों का जल आया था। उस विशिष्ट जल से इन्द्र महाराजा ने भक्ति के लिए प्रभु के अभिषेक करवाए थे ।

इस अत्यन्त प्रभावक जल के पान तथा स्नान से अनेक रोग नाश होते हैं । जैसे खांसी, श्वास, क्षय, कोढ, जलोदर जैसे भयंकर रोग भी नाश होते हैं । इस कुंड के जल से स्नान करके जो भगवान का अभिषेक करता है, उसके कर्ममल दूर होते हैं और परंपरा से मुक्तिपद को प्राप्त करता है ।

इस कुंड में १४ हजार नदियों का प्रवाह देवों के प्रभाव से आता है, इसलिए यह बहुत पवित्र कुंड है । इस कुंड का पानी मीठा और घी के समान निर्मल है । वि.सं. १२१५ के शिलालेख के अनुसार इस कुंड के चारो तरफ दीवार बांधकर उसमें अंबिका और अन्य मूर्तियाँ को स्थापित करने का उल्लेख मिलता है ।

इस गजपद कुंड के दर्शन करके कुमारपाल की टूंक की खिडकी से अंदर प्रवेश कर श्री नेमिनाथजी की टूंक से बाहर निकलकर पुनः ऊपरकोट (देव कोट) के मुख्य द्वार के पास के रास्ते पर आ सकते हैं । इस मुख्य द्वार के सामने ‘मनोहरभुवनवाली’ धर्मशाला के कमरों के पास से सुरजकुंड होकर श्री ‘मानसंग भोजराज’ के जिनालय में जा सकते हैं ।

(६) मानसंग भोजराज का जिनालय : [श्री संभवनाथ भगवान - २५ इंच]

यह जिनालय कच्छ-मांडवी के वीशा ओसवाल शा. मानसंग भोजराज ने बंधवाया था । इसमें मूलनायक श्री संभवनाथ भगवान की सुंदर प्रतिमा बिराजमान है ।

इस जिनालय में जाने से पहले मार्ग में आनेवाला सुरजकुंड भी शा. मानसंग ने करवाया था । जूनागढ गाँव में आदीश्वर भगवान के जिनालय की प्रतिष्ठा भी उन्होने वि.सं. १९०१ में करवायी थी ।

इस जिनालय के दर्शन करके बाहर निकलकर मुख्यमार्ग पर उत्तरदिशा की तरफ आगे जाने पर दायीं तरफ वस्तुपाल तेजपाल की टूंक आती है ।

(७) वस्तुपाल - तेजपाल का जिनालय : [श्री शामला पार्श्वनाथ - ४३ इंच]

इस जिनालय में एक साथ परस्पर जुडे हुए तीन मंदिर है । यह जिनालय गुर्जर देश के मंत्रीश्वर वस्तुपाल - तेजपाल के द्वारा वि.सं. १२३२ से १२४२ के समय में बंधवाया गया । जिसमें अभी मूलनायक श्री शामला पार्श्वनाथ भगवान बिराजमान हैं । इसकी प्रतिष्ठा वि.सं. १३०६ वैशाख सुद ३ शनिवार के दिन आ. प्रद्युम्नसूरि महाराज साहेब की मुख्य परंपरा में श्री देवसूरि के शिष्य श्री जयानंद महाराज साहेब ने की थी । इस जिनालय के मध्य के मंदिर का रंगमंडप २९ १/२ फुट चौडा और ५३ फुट लंबा है, तथा आसपास के दोनों जिनालय के रंगमंडप ३८५, फुट समचतुष्ट है ।

इस जिनालय में लगभग ६ से ७ शिलालेख हैं जो वि.सं. १२८८ फागण सुद १० बुधवार के हैं । जिनमें से ४ लेखों में वस्तुपाल और उनकी पत्नी ललिता देवी के श्रेयार्थ अजितनाथ आदि जिनालय बंधवाये और दो मंदिर द्वितीय पत्नी सोखुकादेवी के श्रेयार्थ बंधवाने का उल्लेख है । अन्य लेखों में भी उन्होंने अलग-अलग तीर्थंकरों की प्रतिमा तथा चरण पादुका आदि पधराने का उल्लेख है ।

मुख्य जिनालय की बायीं ओर के जिनालय में समचतुष्ठ समवसरण में चतुर्मुखी भगवान बिराजमान हैं, जिनमें तीन प्रतिमा श्री पार्श्वनाथ भगवान की वि.सं. १५५६ के साल की एवं चौथी श्री चंदप्रभस्वामी की प्रतिमा वि.सं. १४८५ की साल के उल्लेखवाली है ।

दायीं तरफ के जिनालय में गोलमेरु के ऊपर चतुर्मुखी भगवान बिराजमान हैं जिनमें पश्चिमाभिमुख श्री सुपार्श्वनाथ, उत्तर और पूर्वाभिमुख श्री नेमिनाथ भगवान । ये तीनों प्रतिमाजी वि.सं. १५४६ के साल की हैं । दक्षिणाभिमुख श्री चंद्रप्रभस्वामी की प्रतिमा बिराजमान है । इस मेरु की रचना पीले रंग के पाषाण से की गयी है ।

इन जिनालयों की कारीगरी और कलाकृतियुक्त कमानवाले स्तंभ, जिनप्रतिमा, विविध दृश्य तथा कुंभादि की आकृति आनंदकारी है । चतुर्मुखी जिनालयों की विशालता तथा सजावट नयनरम्य है ।

(८) गुमास्ता का जिनालय : [श्री संभवनाथ भगवान - १९ इंच]

वस्तुपाल-तेजपाल के जिनालय के पीछे के प्रांगण में उनकी माता का जिनालय है। जो 'गुमास्ता का जिनालय' नाम से प्रसिद्ध है। इस मंदिर के मूलनायक श्री संभवनाथ भगवान हैं। वस्तुपाल की माता कुमारदेवी के नाम से यह मंदिर बनवाया गया है इसलिए यह 'वस्तुपाल की माता का जिनालय' के रूप में पहचाना जाता है। कच्छ-मांडवी के गुलाबशाह ने यह जिनालय बंधवाया था, इस कारण से 'गुलाबशाह मंदिर' के नाम से भी पहचाना जाता है। [गुलाब शाह के नाम का अपभ्रंश होने से कालक्रम से गुमास्ता के नाम से प्रचलित होने का अनुमान लगाया जाता है।]

(९) संप्रतिराजा की टूंक : [श्री नेमिनाथ भगवान - ५७ इंच]

वस्तुपाल-तेजपाल के जिनालय से बाहर निकलकर उत्तर दिशा की तरफ संप्रतिराजा की टूंक आती है। श्री चन्द्रगुप्तमौर्य के वंश में हुए अशोक के पौत्र मगधसम्राट् संप्रति महाराजा हुए थे। उन्होंने आचार्य सुहस्तिसूरि महाराज साहेब के सदुपदेश से जैनधर्म का स्वीकार किया था। वह लगभग वि.सं. २२६ के आसपास उज्जैन नगरी में राज्य करता था। उन्होंने सवालाख जिनालय और सवा करोड जिनप्रतिमायें भरवायी थीं। संप्रतिमहाराजा के बंधवाए गए इस जिनालय में मूलनायक श्री नेमिनाथ भगवान बिराजमान हैं। यह प्रतिमा वि.सं. १५१९ में प्रतिष्ठित होने का उल्लेख प्रतिमा की गद्दी में मिलता है। मूलनायक के गर्भगृह के बाहर के झरोखें में देवी की प्रतिमा है जिसे कुछ ग्रन्थों में चक्रेश्वरी देवी और कुछ ग्रंथों में अंबिकादेवी मानकर अलग-अलग समय में उस झरोखें पर उनके नाम लिखे गए हैं। वास्तव में हंसवाहिनी, हाथ में वीणा और पोथी युक्त होने से यह प्रतिमा सरस्वती देवी की है, ऐसा स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है। इस देवी की प्रतिमा के सामने के झरोखें में श्री नेमिनाथ भगवान के शासन अधिष्ठायक गोमेध यक्ष की प्रतिमा बिराजमान है। इसके सिवाय रंगमंडप में ५४ इंच के खडे काउस्सग्गवाली प्रतिमा सहित अन्य २४ नयनरम्य प्रतिमायें भी बिराजमान हैं। इस रंगमंडप के बाहर भी दूसरा बडा रंगमंडप बनवाया गया है।

इस जिनालय का प्रवेश द्वार दो मंजिल का हो ऐसा लगता है। उसका पश्चिम सन्मुख द्वार होते हुए भी वर्तमान में इस जिनालय का दक्षिणाभिमुख प्रवेश द्वार ही खुला रखा गया है। इस जिनालय के बाहर की दीवारें अत्यन्त मनोहर कारीगरी से भरपूर हैं। शिल्पकला के रसिकों को यह कारीगरी बहुत आनंददायक लगती हैं। इस तरह की विविध आकृतियाँ प्राथमिक कक्षा के शिल्पकारों को शिल्पकला में आलंबनकारी हैं।

(१०) ज्ञानवाव का जिनालय : [श्री संभवनाथ - १६ इंच]

संप्रतिराजा के जिनालय के पास उत्तरदिशा की तरफ नीचे उतरते हुए पास में ही दायें हाथ की तरफ के द्वार में प्रवेश करते ही प्रथम मैदान में ज्ञानवाव हैं। इस चौक में उत्तरदिशा की तरफ के द्वार से अंदर प्रवेश करते ही चतुर्मुखजी का जिनालय आता है जो श्री संभवनाथ भगवान के नाम से पहचाना जाता है एवं जिसमें मूलनायक श्री संभवनाथ भगवान है ।

इस जिनालय से नीचे उतरकर भीमकुंड एवं श्री चंद्रप्रभ स्वामी के जिनालय में जा सकते हैं। भीमकुंड के पीछे उत्तरदिशा में अतीत काल के चौवीश तीर्थंकर परमात्मा की प्रतिमा बिराजमान करने के लिए चौवीश देवकुलिका बनाने का कार्य शुरु हुआ होगा, परन्तु किसी कारणवश वह कार्य बंद होने से कार्य अधूरा पडा है ।

ज्ञानवाव जिनालय के दर्शन करके दक्षिणदिशा की तरफ ऊपर चढकर पुनः संप्रतिराजा के जिनालय के पास से पूर्वदिशा में लगभग ५० सीढियाँ चढने पर कोट का दरवाजा आता है । उसमें से बाहर निकलते ही सामने 'लेवल ३१०० फीट' एवं 'बे माइल' ऐसा पत्थर में खोदा हुआ है । वहाँ से आगे लगभग ५० सीढियाँ चढने पर बायीं तरफ 'शेठ धरमचंद हेमचंद' का जिनालय आता है ।

(११) शेठ धरमचंद हेमचंद का जिनालय : [श्री शांतिनाथ भगवान - २९ इंच]

उपरकोट [देवकोट] के दरवाजे से बाहर निकलने के बाद सर्व प्रथम 'शेठ धरमचंद हेमचंद' का जिनालय आता है। जिसे 'खाडा का जिनालय' भी कहा जाता है। इस जिनालय में मूलनायक श्री शांतिनाथ भगवान हैं। मांगरोल गाँव के दशाश्रीमाली वणिक शेठ श्री धरमचंद हेमचंद द्वारा वि.सं. १९३२ में इस जिनालय की मरम्मत व शोभावृद्धि का कार्य किया गया ।

(१२) मल्लवाला जिनालय : [श्री शांतिनाथ भगवान - २१ इंच]

'शेठ धरमचंद हेमचंद' के जिनालय से आगे लगभग ३५ से ४० सीढियाँ चढते हुए दायीं तरफ 'मल्लवाला जिनालय' आता है । इसमें मूलनायक श्री शांतिनाथ भगवान हैं । इसका उद्धार जोरावरमल्लजी के द्वारा हुआ था, इसलिए यह जिनालय मल्लवाला जिनालय के नाम से पहचाना जाता है ।

राजुल गुफा : 'मल्लवाला जिनालय' से दक्षिणदिशा की तरफ थोडी सीढियाँ आगे जाते ही पत्थर की एक बडी शिला के नीचे झुककर जाने से वहाँ पर लगभग १ १/२ से २ फूट ऊँचाईवाली राजुल-रहनेमि की मूर्ति स्थापित होने के कारण यह स्थान 'राजुल की गुफा' के नाम से पहचाना जाता है ।

प्रेमचंदजी की गुफा [गोरजी की गुफा] **:** राजुल की गुफा से बाहर निकलकर दक्षिणदिशा के तरफ के कच्चे रस्ते से आगे जाते हुए बायें हाथ की तरफ सातपुडा के कुंड की तरफ जाने का कच्चा रस्ता आता है और दाएँ हाथ की तरफ झाडी के रस्ते से नीचे उतरते-उतरते पहाड़ के अंत में एक बडी शिला आती है, जिसके नीचे 'प्रेमचंदजी की गुफा' है । इस गुफा के पास ही खाई होने से अत्यन्त सावधानी पूर्वक इस गुफा के द्वार में प्रवेश करना पडता हैं । इस गुफा में अनेक महात्माओं ने साधना की है । इसमें श्री प्रेमचंदजी महाराज नामक साधु ने बहुत लंबे समय तक साधना की है । वे योग विद्या में बहुत कुशल थे । वे अपने गुरुभाई कपूरचंदजी को ढूँढने के लिए आए तब इस स्थान पर रुके थे । कपूरचंदजी महाराज के लिए ऐसा सुनने में आया है कि वे अनेक रूप धारण कर सकते थे और अनेक स्थान पर जाने के लिए उनके पास आकाशगामिनी विद्या भी थी । यह गुफा शेठ देवचंद लक्ष्मीचंद की पेढी की मालिकी की है । इसमें समय-समय पर जरुरी ऐसी मरम्मत भी भूतकाल में इस पेढी के द्वारा ही करवायी गयी है । शेठ देवचंद लक्ष्मीचंद की पेढी की तलहटी की जगह में भाताखाता के पीछे प्रेमचंदजी महाराज के चरण पादुका की देवकुलिका बनवायी गयी है । जिसमें वि.सं. १९२१ का उल्लेख है । उसके पास दयालचंदजी महाराज के चरण पादुका में वि.सं. १९२२ के साल का उल्लेख है । इस गुफा के बाहर कच्चे रस्ते में पूर्वदिशा की तरफ आगे पाटवड के किनारे से बिलखा जा सकते हैं ।

श्री प्रेमचंदजी महाराज की गुफा से वापस मुरव्य सीढी के रास्ते से लगभग ९० सीढियाँ चढने पर चतुर्मुखजी का मंदिर आता है । रास्ते में दायीं और दिगंबर संप्रदाय का मंदिर आता है ।

(१३) चौमुखजी जिनालय : [श्री नेमिनाथ भगवान - २५ इंच]

चौमुखजी के जिनालय में वर्तमान में उत्तराभिमुख मूलनायक की नेमिनाथ, पूर्वाभिमुख श्री सुपार्श्वनाथ, दक्षिणाभिमुख श्री चन्द्रप्रभस्वामी और पश्चिमाभिमुख श्री मुनिसुव्रतास्वामी हैं । इनकी प्रतिष्ठा वि.सं. १५११ में अ. जिनहर्षसूरि महाराज साहेब ने करवायी हैं ऐसा पबासण में उल्लेख है । यह जिनालय 'श्री शामला पार्श्वनाथ' के नाम से भी पहचाना जाता है । इस का

रहस्य समझ में नहीं आता है, परन्तु पूर्व कोई काल में वहाँ मूलनायक श्री शामला पार्श्वनाथ होने की संभावना है । इस जिनालय के अंदर के पबासण के चारों कोने मे समकोण स्तंभ के प्रत्येक स्तंभ में २४-२४ प्रतिमायें इस तरह कुल ९६ प्रतिमायें खोदी हुई हैं । ये चार स्तंभ चौरी के समान दिखने के कारण इस जिनालय को 'चौरीवाला जिनालय' भी कहा जाता है ।

वि.सं. २०५८ के दौरान चतुमुर्खजी का लेप हुआ तब भूल से मूलनायक श्री नेमिनाथ तथा बाकी के तीन भगवान में श्री चंद्रप्रभस्वामी के लंछन किए गए हैं ।

इस चौमुखी जिनालय से आगे लगभग ७०-८० सीढियाँ चढने पर बायीं तरफ सहसावन श्री नेमिनाथ भगवान की दीक्षा-केवलज्ञान कलयाणक भूमि की तरफ जाने का मार्ग आता है, और दायीं तरफ १५-२० सीढियाँ चढने पर 'गौमुखीगंगा' नामक स्थान आता है ।

गौमुखी गंगा :

श्री गौमुखीगंगा में प्रवेश करते ही हिन्दु संप्रदाय के देव-देवी की प्रतिमा की देवकुलिका आती है । वहाँ से दायीं तरफ नीचे जाने के लिए सीढियाँ उतरकर बायीं तरफ आगे चौबीस तीर्थंकर परमात्मा की चरणपादुकायें एक देवकुलिका में स्थापित की गयी हैं । प्रत्येक चरणपादुका के आगे तीर्थंकर भगवान के नाम खोदे हुए हैं । इस गौमुखीगंगा के स्थान का संचालन अभी हिन्दु संप्रदाय के सन्यासियों के द्वारा किया जाता है । परन्तु इन चरणपादुकाओं की पूजादि शेठ देवचंद्र लक्ष्मीचंद पेढी के द्वारा ही की जाती है ।

(१४) रहनेमि का जिनालय : [श्री सिद्धात्मा रहनेमिजी - ५१ इंच]

गौमुखीगंगा के स्थान से लगभग ३५० सीढियाँ ऊपर चढने पर दायीं तरफ रहनेमि का जिनालय आता है । इस जिनालय के मूलनायक सिद्धात्मा श्री रहनेमि की श्यामवर्णी प्रतिमा बिराजमान है । ५-६ वर्ष पहले इस प्रतिमा का लेप किया गया था । अखिल भारत में प्राय: एकमात्र यही जिनालय है जहाँ अरिहंत परमात्मा न होते हुए भी सिद्धात्मा श्री रहनेमि की प्रतिमा मूलनायक के रूप में बिराजमान है ।

श्री रहनेमि बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ परमात्मा के छोटे भाई थे । जिन्होंने दीक्षा लेकर गिरनार की पवित्र भूमि में संयमसाधना करके, अष्टकर्म का क्षय कर, सहसावन में केवलज्ञान और मोक्षपद प्राप्त किया था ।

रहनेमि के जिनालय से आगे साचाकाका की जगह के लगभग ५३५ सीढियाँ चढने पर अंबाजी का मंदिर आता है।

*** अंबाजी की टूंक :**

इस अंबाजी की टूंक में अंबिका का मंदिर आता है। दामोदर कुंड के पास दामोदर का मंदिर, गिरनार पर श्री नेमिनाथ भगवान तथा अंबाजी का मंदिर संप्रति महाराजा ने बंधवाया है ऐसा कहा जाता है। शिल्पस्थापत्य के आधार पर बारहवीं तेरहवी सदी की रचनावाला यह मंदिर–वस्तुपाल–तेजपाल ने बंधवाया है , ऐसा भी उल्लेख है । जिसमें श्री नेमिनाथ भगवान की अधिष्ठायिका अंबिका देवी की प्रतिमा बिराजमान की गयी थी ।

कल्पसूत्र की एक सुवर्णाक्षरी प्रत के अंत में ग्रंथ प्रशस्ति में निम्नोक्त उल्लेख है ।

श्री अम्बिका महादेव्या, उज्जयन्ताचलोपरि ।
प्रासादः कारितः प्रौढः सामलेन सुभावतः ॥१०॥

वि.सं. १५२४ की इस प्रशस्ति पर से स्पष्ट समझा जा सकता है कि सामल नामक शाहुकार ने सद्भावनापूर्वक श्री गिरनार पर्वत के ऊपर श्री अंबिका महादेवी का जीर्ण हुआ बड़ा चैत्य नया बंधवाया था ।

काळ क्रम से आज हिंदुओ द्वारा वैदिकधर्म की पद्धति से उनका दर्शनपूजन आदि होता है और उनके संन्यासीओं द्वारा ही इस मंदिर की देखरेख होती है ।

इस मंदिर के पीछे श्री नेमिनाथ भगवान की पादुकायें स्थापित की गई हैं । लोग इन्हें शांब की पादुका हैं ऐसा कहते हैं। वस्तुपाल के द्वारा उस समय इस टूंक के ऊपर श्री नेमिनाथ भगवान आदि की प्रतिमाओं को स्थापित करने का उल्लेख मिलता है।

वस्तुपाल के प्रशस्ति लेख एवं समकालीन, समीपकालीन और उत्तरकालीन जैन लेखों के अनुसार पीछे के तीन शिखर गोरखनाथ, ओघडनाथ और गुरुदत्तात्रेय के असली नाम ''अवलोकन'', ''शांब'', और ''प्रद्युम्न'' थे । और जिनसेनकृत 'हरिवंशपुराण' और 'स्कन्दपुराण' में भी अम्बाजी के बाद शांब और प्रद्युम्न का उल्लेख मिलता है । अंबाजी सहित इन तीनों शिखरों पर भी मंत्रीश्वर वस्तुपाल ने नेमिनाथ भगवानकी देवकुलिकायें करवाई थी, ऐसा वि.सं. १२८८ की छत्र शिला प्रशास्तियों में कहा है ।

अंबाजी की टूंकसे लगभग १०० सीढियाँ उतरकर के पुनः लगभग ३०० सीढियाँ चढने पर गोरखनाथ की टूंक आती हैं।

*** गोरखनाथ की टूंक :** (अवलोकन शिखर)

इस गोरखनाथ की टूंक के ऊपर श्री नेमिनाथ परमात्मा की वि.सं. १९२७ वैशाख सुद ३ शनिवार के लेखवाली पादुका हैं, वे बाबु धनपतसिंहजी प्रतापसिंहजी ने स्थापित की हैं । ये पादुका प्रद्युम्न की है ऐसा कुछ लोगों का कहना है । इस टूंक के ऊपर अभी नाथ संप्रदाय के संन्यासीओं का कब्जा है ।

गोरखनाथ की टूंक से आगे लगभग १५ सीढियाँ उतरने के बाद दाए हाथ की तरफ दीवार में काले पाषाण में जिनप्रतिमा खुदवाने में आई है । और लगभग ४०० सीढियाँ उतरने के बाद भी बाएँ हाथ तरफ के एक बड़े काले पाषाण में जिनप्रतिमा खोदी हुई है । इस तरह कुल लगभग ८०० सीढियाँ उतरकर बिना सीढीवाले विकटमार्ग से चौथी टूंक जा सकते हैं ।

*** ओघड टूंक :** (चौथी टूंक)

इस ओघड टूंक के ऊपर पहुँचने के लिए कोई सीढ़ियाँ नहीं हैं, इसलिए पत्थर के ऊपर टेढ़ेमेढ़े चढकर ऊपर जाया जाता है । यह मार्ग बहुत विकट होने से कोई अति श्रद्धावान साहसिक आत्मा ही इस शिखर को पार करने का प्रयत्न करती है । इस टूंक के ऊपर एक बड़ी काली शिला में श्री नेमिनाथजी की प्रतिमा और दूसरी शिला के ऊपर पादुका खोदी हुई हैं। जिसमें वि.सं. १२४४ में प्रतिष्ठा करने का लेख देखने में आता हैं ।

चौथी टूंक से सीधे ही पांचवीं टूंक जाने के लिए खतरेवाला विकट रास्ता है । इसलिए चौथी टूंक से नीचे उतरकर आगे बाँए हाथ की तरफ की सीढी से लगभग ६९० सीढियाँ ऊपर चढने पर पाँचमीं टूंक का शिखर आता है इन सीढ़ियों का चढान बहुत कठिन है ।

*** पाँचवीं टूंक :** (मोक्ष कल्याणक टूंक)

गिरनार माहात्म्य के अनुसार इस पांचवीं टूंक पर पूर्वाभिमुख परमात्मा की पादुका के ऊपर वि.सं. १८९७ के प्रथम आसोज कि वद - ७ द्वारा गुरूवार को शा. देवचंद लक्ष्मीचंद द्वारा प्रतिष्ठा करवाने का लेख है । इन पादुकाओं के आगे अब अजैनों द्वारा दत्तात्रय भगवान की प्रतिमा स्थापित करने में आई है । उस मूर्ति के पीछे की दीवार में पश्चिमाभिमुख श्री नेमिनाथ

भगवान की प्रतिमा खोदी हुई है । जिसको हिन्दु धर्मी शंकराचार्य की मूर्ति कहते हैं । इन पादुकाओं की प्रदक्षिणा पूर्ण होते ही बाँए हाथ की तरफ एक बडा विशालकाय घंट है जिसमें वि.सं. १८९४ की साल है । यहाँ यात्रा के लिए पधारे हुए सभी हिन्दु यात्री श्रद्धापूर्वक यह घंट बजा कर खुद की गिरनार की यात्रा पूर्ण होने का आनंद मानते हैं । अभी यह टूंक दत्तात्रय के नाम से प्रसिद्ध है, जैन मान्यतानुसार श्री नेमिनाथ परमात्मा के श्री वरदत्त, श्री धर्मदत्त और श्री नरदत्त ऐसे तीन गणधरों के नाम के अंत में 'दत्त' शब्द होने से 'दत्तात्रय' ऐसा नाम पडा । कई लोग पादुका को श्री वरदत्त गणधर की पादुका भी कहते हैं। लगभग ६० वर्ष पूर्व इस टूंक का संपूर्ण संचालन शेठ देवचंद लक्ष्मीचंद की पेढी के द्वारा होता था । पहली टूंक से पूजारी पूजा करने के लिए आता था । अभी दत्तात्रय के नाम से प्रसिद्ध इस टूंक का संपूर्ण संचालन हिन्दु महंत के द्वारा हो रहा है।

आज जैन मात्र दर्शन और इस पवित्र भूमी की स्पर्शना करके संतोष मानते हैं ।

इस पाँचवीं टूँक से नीचे उतरकर मुख्य सीढी पर आकर वापिस जाने के रास्ते से जाने के बदले बाएं हाथ की तरफ लगभग ३५० सीढियाँ उतरते ही 'कमंडलकुंड' नामक स्थान आता है ।

*** कमंडल कुंड :**

इस कुंड का संचालन हिन्दु महंत के द्वारा होता है । यहाँ नित्य अग्नि की धूनी प्रगटित है । यहाँ आनेवाले प्रत्येक यात्रिक के लिए बिना मूल्य अन्नक्षेत्र चलता है, जहाँ नित्य सैंकडों यात्रिक भोजन की सुविधा प्राप्त करते हैं ।

कमंडलकुंड से नैऋत्य कोने में जंगल के मार्ग से रतनबाग की तरफ जा सकते हैं । यह रास्ता विकट और देवाधिष्ठित स्थान है, जहाँ आश्चर्यकारक वनस्पतियाँ हैं । इस रतनबाग में रतनशिला पर श्री नेमिनाथ प्रभु के देह का अग्निसंस्कार हुआ था, ऐसा पाठ कुछ ग्रंथों में देखने को मिलता है । श्री नेमिनाथ भगवान के साथ ५३६ महात्मा भी निर्वाण को प्राप्त हुए थे इसी कारण से उनका भी अग्निसंस्कार इसी विस्तार में हुआ होगा ऐसा स्पष्ट समझा जा सकता है ।

इस कमंडलकुंड से अनसुया की छट्ठी टूंक और महाकाली की सातवीं टूंक पर जा सकते हैं ।

*** कालिका टूंक :**

कमंडलकुंड से कालिकाटूंक जाने का मार्ग अत्यन्त विकट और भयंकर होने से मार्गदर्शक को साथ में ले जाना हितावह

है । कोई रस्ता भूल न जाय इसलिए जगह-जगह पर सिंदूर की निशानियाँ बनायी गयी हैं । मार्ग में काँटें और पत्थर होने से कोई हिम्मतवान व्यक्ति ही कालिकाटूंक तक पहुँचने में समर्थ होता है । पूर्व में तो ऐसा कहा जाता था कि कालिका टूंक में दो व्यक्ति जाए तो एक व्यक्ति ही वापिस जीवित लौटता है । कालिका की टूंक पर कालिका माता का स्थान और ऊपर त्रिशूल है ।

कमंडलकुंड से पांडवगुफा में जाने का मार्ग भी मिलता है । यह गुफा पाटणवाव तक निकलती है, ऐसा जानने में आया है ।

कमंडलकुंड से वापिस गोरखनाथ टूंक, अंबाजी टूंक होकर गौमुखी गंगा के पास उत्तर दिशा की तरफ आगे बढ़ते हुए आनंदगुफा, महाकालगुफा, भैरवजप, सेवादास का स्थान और पत्थर चट्टी के स्थान से होकर लगभग १२०० सीढियाँ नीचे उतरते ही सहसावन का विस्तार आता है ।

*** सहसावन (सहस्त्रामवन) :** [श्री नेमिप्रभु की दीक्षा-केवलज्ञान भूमि]

सहसावन में बालब्रह्मचारी श्री नेमिनाथ परमात्मा की दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक हुए है । सहसावन को 'सहस्त्राम्रवन' कहा जाता है क्योंकि यहाँ सहस्त्र अर्थात् हजारों आम के घटादार वृक्ष हैं । चारो तरफ आम से घिरे इस स्थान की रमणीयता तन-मन को अनोखी शीतलता का अनुभव कराती है । आज भी मोर के मधुर केकारव और कोयल के टहूंकार से गुंजती यह भूमि भी नेमिप्रभु के दीक्षा अवसर के वैराग्यरस की सुवास से महकती और कैवल्यलक्ष्मी की प्राप्ति के बाद समवसरण में बैठकर देशना देते हुए प्रभु की पैंतीस अतिशययुक्त वाणी के शब्दों से सदा गुंजती रहती हैं ।

इस सहसावन में श्री नेमिनाथ प्रभु की दीक्षा कल्याणक तथा केवलज्ञान कल्याणक की भूमि के स्थान पर प्राचीन देव कुलिकाओं में प्रभुजी की पादुकायें पधरायी हुई हैं ।

उसमें केवलज्ञान कल्याणक की देवकुलिका में तो श्री रहनेमिजी तथा साध्वी राजीमतीश्रीजी यहाँ से मोक्ष में गए थे इसलिए उनकी पादुकायें भी बिराजमान हैं ।

लगभग ४०-४५ वर्ष पूर्व तपस्वी सम्राट प.पू. आ. हिमांशुसूरि महाराज साहेब पहली टूंक से इस कल्याणक भूमि की

स्पर्शना करने के लिए विकट पगदंडी के मार्ग से आते थे । उस समय कोई भी यात्रिक इस भूमि की स्पर्शना करने का साहस नहीं करता था । इसलिए आचार्य भगवंत के मन में विचार आया कि ''यदि इसी तरह इस कल्याणक भूमि की उपेक्षा होगी तो इस ऐतिहासिक स्थान की सुरक्षा खतरें में पड जाएगी'' ! बस इस समय कोई दिव्यप्रेरणा के बल से महात्मा ने विचार किया कि प्राचीन देवकुलिका और मात्र पादुका के दर्शन करने के लिए कोई भी यात्रिक उत्सुक नही बनेगा । इसी कारण से उन्हें पुष्ट आलंबन मिले इसलिए दीक्षा कल्याणक और केवलज्ञान कल्याणक के प्रतीक के रूप में यदि दो जिनालयों का निर्माण हो तो अनेक भाविक जीवों को इस भूमि के दर्शन-पूजन-स्पर्शन का लाभ मिल सकता है । उसके बाद उनके अथक पुरुषार्थ से सहसावन में जगह प्राप्त कर केवलज्ञान कल्याणक के प्रतीक के रूप में समवसरण मंदिर का निर्माण हुआ ।

*** समवसरण मंदिर :** [श्री नेमिनाथ भगवान - ३५ इंच]

इस समवसरण मंदिर में चतुर्मुखजी के मूलनायक श्यामवर्णी संप्रतिकालीन श्री नेमिनाथ भगवान की प्रतिमा बिराजमान है । इन चतुर्मुखजी प्रभुजी की प्रतिष्ठा वि.सं. २०४० चैत्र वद - पांचम के दिन प.पू. आ. हिमांशुसूरि महाराज साहेब, प.पू.आ. नररत्नसूरि महाराज साहेब, प.पू. आ. कलापूर्णसूरि महाराज साहेब तथा प.पू. पं. हेमचन्द्र विजयजी गणिवर्य आदि विशाल साधु-साध्वी समुदाय की पावन निश्रा में हुई थी ।

इस समवसरण जिनालय में प्रवेश करते ही सामने समवसरण की सीढियाँ को देखकर साक्षात् प्रभु के समवसरण में ही प्रवेश कर रहे हों, ऐसे भाव प्रगट होते हैं । समवसरण की सीढियाँ चढकर ऊपर जाते ही मध्य में अशोक वृक्ष के नीचे चतुर्मुखजी प्रभुजी के बिंबों को निहालकर हृदय पुलकित हो जाता है । इस समवसरण के सामने रंगमंडप में अतीत चौवीशी के दस तीर्थंकर सहित श्यामवर्णी श्री नेमिनाथ परमात्मा तथा उनके सामने अनागत चौवीशी के चौबीस तीर्थंकर सहित पीतवर्णी श्री पद्मनाभ परमात्मा की नयनरम्य प्रतिमायें बिराजमान हैं । अन्य रंगमंडपों में जीवित स्वामी श्री नेमिनाथ भगवान तथा सिद्धात्मा श्री रहनेमिजी की प्रतिमायें, विशिष्ट कलाकृति युक्त काष्ठ का समवसरण मंदिर तथा प्रत्येक रंगमंडप में श्री नेमिनाथ प्रभु के ६-६ गणधर भगवंतों की प्रतिमायें स्थापित की गयी है ।

इसके सिवाय जिनालय में प्रवेश करते ही रंगमंडप में बायीं ओर श्री नेमिनाथ भगवान के शासन अधिष्ठायक श्री गोमेध यक्ष तथा दायीं ओर शासन अधिष्ठायिका श्री अंबिका देवी की प्रतिमायें बिराजमान हैं । अन्य रंगमंडपों में प.पू.आ. हिमांशुसूरि

महाराज साहेब के ज्येष्ठ पूज्यों की प्रतिकृति तथा चरण पादुका बिराजमान हैं ।

समवसरण के पीछे नीचे गुफा में श्री नेमिनाथ परमात्मा की अत्यन्त मनमोहक प्रतिमा [२१ इंच] बिराजमान है । जहाँ अनेक महात्माओं ने कई दिनों तक अट्ठम आदि तपश्चर्या सहित विशिष्ट जाप की आराधनायें की हैं और बार-बार आराधना करने आते हैं ।

प.पू.आ. हिमांशुसूरि महाराज साहेब द्वारा प्रेरित 'श्री सहसावन कल्याणकभूमि तीर्थोद्धार समिति'-जूनागढ द्वारा समवसरण मंदिर का निर्माण किया गया है । यहाँ विशिष्ट आराधना करने की भावनावाले पुण्यशालियों के लिए धर्मशाला की व्यवस्था भी इसी समिति के द्वारा संचालित है । पूर्व संमति पूर्वक आनेवाले यहाँ रात्रि विश्राम कर सकते हैं । भोजन-आयंबिल की व्यवस्था भी उपलब्ध है । इस संकुल में दर्शनार्थ आनेवाले सर्व साधर्मिक बंधुओं को भाता दिया जाता है ।

इस समवसरण मंदिर से बाहर निकलकर सीढियाँ उतरते ही दायी ओर इस मंदिर के प्रेरणादाता प.पू.आ. हिमांशुसूरि महाराज साहेब की अंतिम संस्कार भूमि आती है जहाँ पूज्यश्री की पादुका तथा प्रतिकृति बिराजमान है ।

इस अंतिमसंस्कार भूमि से ६० सीढियाँ उतरते ही दो रस्ते आते हैं, जिसमें बायीं ओर के मार्ग से ३००० सीढियाँ उतरकर लगभग आधा किलोमीटर चलने पर तलहटी आती है । दायी ओर १० सीढियाँ उतरते ही बायीं ओर बुगदा की धर्मशाळा आती है जहाँ अनेक महात्माओं ने स्थिरता करके ६८ उपवास, मासक्षमण आदि उग्र तपश्चर्या की है । वहाँ से ३० सीढियाँ उतरते ही बायीं ओर श्री नेमिनाथ परमात्मा की केवलज्ञान कल्याणक की प्राचीन देवकुलिका आती है ।

श्री नेमिनाथ परमात्मा की केवलज्ञान कल्याणक की प्राचीन देहरी :

इस केवलज्ञान कल्याणक की देहरी के मध्य में श्री नेमिनाथ प्रभु की चरण पादुका तथा उसके पास उनके भाई मुनि श्री रहनेमिजी तथा साध्वी राजमतीश्रीजी की पादुकायें बिराजमान है । इस देहरी से ३० सीढियाँ उतरते ही बायी ओर श्री नेमिप्रभु की दीक्षा कल्याणक की प्राचीन देहरी आती है ।

श्री नेमिप्रभु की दीक्षा कल्याणक की प्राचीन देहरी :

यह दीक्षा कल्याणक की प्राचीन देहरी एक विशाल चौक में स्थित है । इसमें श्री नेमिनाथ प्रभु की श्यामवर्णी चरण

पादुका है । अनेक मुमुक्षु आत्मायें दीक्षा के पूर्व इस पावन भूमि की स्पर्शना करने अवश्य आते हैं ।

इस दीक्षा कल्याणक भूमि के सामने वाल्मिकी गुफा तथा बाये हाथ से नीचे उतरते ही भरतवन, गिरनारी गुफा, हनुमानधारादि हिन्दु स्थान आते हैं । वहाँ से नीचे उतरते ही परिक्रमा के रस्ते में आनेवाला 'झीणाबावा की मढी' के स्थान पर पहुँचा जा सकता है ।

इस दीक्षा कल्याणक की देहरी से दायी ओर वापिस ७० सीढियाँ ऊपर चढते ही दायी ओर तलहटी की तरफ जाने का मार्ग आता है । जिस मार्ग पर लगभग १८०० सीढियाँ उतरते ही रायण के वृक्ष के नीचे एक प्याऊ आती है जहाँ उबले हुए पानी की व्यवस्था भी उपलब्ध है । वहाँ से १२०० सीढियाँ उतरकर लगभग आधा कीलोमीटर चलकर जाने पर गिरनार तलहटी आती है ।

सहस्त्रावन में श्री नेमिप्रभु की दीक्षा-केवलज्ञान कल्याणक के साथ अन्य भी ऐतिहासिक प्रसंग हुए हैं ।

* सहसावन में करोडों देवताओं के द्वारा श्री नेमिनाथ भगवान का प्रथम तथा अंतिम समवसरण रचाया गया था ।
* सहसावन में साध्वी राजीमतिजी तथा श्री रहनेमिजी ने मोक्ष पद प्राप्त किया ।
* सहसावन में श्री कृष्णवासुदेव के द्वारा सुवर्ण और रत्नमय प्रतिमाजी युक्त तीन जिनालयों का निर्माण करवाया गया था।
* सहसावन में सोने के चैत्य में मनोहर चौवीशी का निर्माण करवाया गया था ।
* सहसावन के पास लक्षाराम में एक गुफा में तीनों काल की चौवीशी के बहोत्तेर तीर्थंकर भगवान की प्रतिमायें बिराजमान की गयी हैं ।

गिरनार की अजब-गजब की बातें

गरवागढ़ गिरनार के पहाडों में अनेक गुफायें और गुप्तस्थान हैं, जिनके कारण गिरनार बहुत स्थानों में काफी खोखला दिखाई देता है । इन पहाडों में अनेक संत, महंत, सिद्ध पुरूष, योगी, महात्मा तथा अनेक अघोरी बाबा और महात्माओं ने निवास करके अनेक प्रकार की साधनाओं को सिद्ध किया है ।

आज भी अनेक विभूतियाँ इस गिरनार की गुफाओं में आत्मध्यान में लीन होकर आत्म-साधना कर रहे हैं ऐसी जानकारी मिलती हैं, जिनकी उम्र १००-२००-३०० तथा सैकडों वर्षों की भी होती है । जैन ग्रंथों में तथा अन्य धर्मग्रंथों में भी यक्षादि अनेक आत्मायें गिरनार में बसे हुए है ऐसा उल्लेख आता है ।

इन संतों, महंतों, सिद्धयोगी तथा यक्षादि आत्माओं की अनेक कथाएँ और चमत्कारों की बाते आज भी लोगों द्वारा जानने को मिलती है, जिनमें से कुछ बातों का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है ।

(१) जुनागढ के गोरजी कांतीलालजी के कहने के अनुसार जुनागढ के कुछ भाई गध्धेसिंह के पर्वत परं जाकर गधैया के सिक्के इकट्ठे करके गठरी बांध कर बोरदेवी के मुकाम पर आये, उस समय बोरदेवी में उपस्थित बाबा को उन्होंने तंग किया। उससे बाबा का क्रोध आसमान पर चढते ही कुछ तो पागल होकर के वही के वहीं मृत्यु को प्राप्त हुए । कुछ भाग गये उनकी रास्ते में ही मृत्यु हो गई तथा कुछ जुनागढ़ में पहुँचने के बाद मृत्यु को प्राप्त हुए थे ।

(२) गोरजी कांतीलालजी कहते थे कि गिरनार पर 'पत्थर चट्टी' की जगह में रहनेवाले हरनाथगर नामक अघोरी ने एक बार किसी ब्राह्मण के पुत्र को उठाकर लाया तथा उसका भक्षण किया था । वह ब्राह्मण पुत्र को ढूँढते ढूँढते गिरनार पर आया परन्तु पुत्र न मिलने से अत्यंत दु:खी हृदय से गिरनार के अधिष्ठायक देवों से प्रार्थना करता है । ब्राह्मण के आक्रंद से तुष्ट हुए वरदत्त शिखर के अधिष्ठायक देव जागृत हुए । उनकी सहायता से वह ब्राह्मण पुत्र पुन: जीवित हुआ और अधिष्ठायक देव ने अघोरी की लकडी द्वारा बहुत पीटाई करने पर वह अघोरी लंगडा हो गया । उसके बाद बहुत से अघोरी गिरनार छोड़कर चले गये ।

(३) गिरनार के श्री नेमिनाथ दादा की पूजा करनेवाली आराधक आत्मायें धन्य बन जाती है । अरे ! बालब्रह्मचारी नेमि प्रभु के दर्शन-पूजन से कितने ही आराधक आत्माओं ने वासनाओं का वमन होते हुए अनुभव किया है । आज भी अनेक मुमुक्षु आत्मायें दीक्षापूर्व श्री नेमिप्रभु तथा दीक्षा कल्याणक भूमि के दर्शन-पूजन-स्पर्शन द्वारा संयम अंगीकार करने में आने वाले विघ्न तथा अंतरायों को तोडने में समर्थ बनते हैं । कितनी ही आत्मायें इस गिरनार की भक्ति

करके ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार करके आत्माराधना में लीन बनी हैं ।

(४) एक साधक आत्मा गिरनार के अमिझरा पार्श्वनाथ भगवान के तहखाने में साधना करने अनेकबार आते थे, जब एक रात तहखाने (गुफा) में जाप-ध्यान की आराधना में लीन थे और तहखाने (गुफा) का दरवाजा पुजारी बाहर से बंध करके चला गया था । तब आकाशमार्ग से एक दिव्य प्रकाश का पूंज तहखाने (गुफा) में उतरते हुए देखा और थोडी देर बाद उस प्रकाश के पूंज में से दो चारणमुनियों को अवतरित होते हुए देखा । थोडी देर अमिझरा पार्श्वनाथ भगवान की भक्ति की । उसके बाद उन चारणमुनियों को अत्यंत तेजगति से आकाशमार्ग पर गमन करते हुए देखा था ।

(५) एक महात्मा ने गिरनार की ९९ यात्रा करते करते एक बार एक विशिष्ट गुफा में प्रवेश किया । वहाँ अत्यंत शांत, तेजस्वी, हृष्टपुष्ट देहधारी, तेज आभावाले एक दिव्य संत के दर्शन किये, और उनके स्वमुख से गिरनार महातीर्थ का अलौकिक माहात्म्य सुना था ।

(६) राजनगर - अहमदाबाद से एक आराधक परिवार संघ लेकर के गिरनार मंडन श्री नेमिनाथ प्रभुजी को आभूषण चढ़ाने आया । तब अठारह अभिषेक के दिन श्री नेमिनाथ दादा के पूरे मंदिर की छत में से बड़ी बड़ी बूँदे टपकती हो उस तरह अमिझरा था । तथा श्री नेमिप्रभु के प्रतिमाजी को तीन बार अंगलूंछणा करने पर भी जब अमिझरना चालु ही रहा। तब सभी को वैसे भीने प्रभुजी की ही पूजा करनी पडी थी ।

(७) गिरनार के ऊपर श्री प्रेमचंदजी की गुफा में बहुत से महात्माओं ने ध्यान किया है । श्री प्रेमचंदजी महाराज योग विद्या में निपुण थे । एक बार वे अपने गुरुभाई श्री कपुरचंदजी को ढूँढने के लिए गिरनार की इस गुफा में आकर रहे थे। श्री कपुरचंदजी महाराज के पास अनेक रूप धारण करने की तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर उडकर जाने की आकाश गामिनी विद्या थी ।

(८) सं. १९४३ में गिरनार पर एक योगी, एक प्रबुद्ध लेखक को अपनी गुफा का पाषाण का द्वार खोल कर अंदर ले गये। उसके बाद उस लेखक ने अनेकबार उस स्थल पर जा करके द्वार की खोज की, परन्तु वहाँ पर खडक की शिला के अलावा उसे दूसरा कुछ नहीं मिलता ।

(९) एकबार कुछ आराधक श्री नेमिनाथ दादा के देरासर (मंदिर) के बाहर की धर्मशाला के कमरें में जाप की आराधना कर रहे थे । तब श्री नेमिप्रभु के जिनालय में से लगातार घंटनाद सुनाई दिया था ।

(१०) कितने ही साध्वीजी भगवंत श्री नेमिनाथ भगवान का मंदिर मांगलिक होने के बाद बाहर रही हुई शासन अधिष्ठायिका

अंबिकादेवी की देहरी के पास आराधना कर रहे थे तब दादा के दरबार में से लगभग पोने घंटे तक लगातार नृत्यों का नाद और नुपूर के झनकार की दिव्यध्वनि का गुंजन सुनाई दिया था ।

(११) वि.सं. २०३१ के कार्तिक महिने में एक आराधक आत्मा ने खूब भावपूर्वक श्री नेमिनाथ भगवान की प्रतिमाजी को प्रक्षाल करने के बाद अंगलूंछणा वगैरह से सब कुछ सुखा कर दिया था । लेकिन जब पूजा करने गये तब प्रभुजी के चरणकमलों में से लगभग चार कटोरी भर जाए उतना दिव्य सुगंधी नवणजल झरा था ।

(१२) इस गिरनार की औषधि के अचिन्त्य प्रभाव से गत सैकडों वर्षों में अनेक महापुरुष आकाशगमन द्वारा तीर्थयात्रा करते थे ।

(१३) एकबार एक योगी पुरुष को जिन्दा जलाने में आया । फिर भी उस महात्मा ने तीव्र जलती अग्नि में से सहजतापूर्वक बाहर निकल कर कलकत्ता के अंग्रेज गवर्नर को आश्चर्यचकित कर दिया था ।

(१४) गिरनार की गुफा में रहने वाले नागाबाबा महाशिवरात्रि के मेले के अवसर पर अनेक प्रकार के अकल्पनीय योग के दावपेच द्वारा सभी को आश्चर्य मुग्ध करते रहते हैं ।

आज भी ऐसे बहुत अघोरी गिरनार की गुफा में रहते हैं जो महाशिवरात्रि के मेले के अवसर पर भवनाथ मंदिर के दर्शनार्थ आते हैं । फिर मृगीकुंड में स्नान करने के लिये गिरते हैं । लेकिन वापिस बाहर निकलते हुए दिखाई नहीं देते । (प्राय: सुक्ष्म शरीर करके चले जाने की संभावना है)

(१५) ई.स. १८८९-१८९० में वंथली तालुका के सेलरा गाम के एक आहिर के पुत्र को उसके खेत में से आकाश मार्ग द्वारा आये हुए कोई साधु अपने पीछे उठाकर गिरनार पर ले जाते थे । एक गुफा में तीन दिन रखकर वापिस छोड जाते थे। तब पुलिस खोजबीन करती थी । परन्तु उस समय के नवाब रसुलखान ने यह कह कर जाँच पडताल बंध करवा दी कि अब यह लडका सही सलामत वापिस आ गया है । इसलिए उन साधुओं की खोज करने के लिये विशेष गहराई में जाने की जरूरत नहीं है ।

(१६) एकबार एक बाबा ने जंगल में कोई रसकूपिका की खोज करके उसमें से रस लेकर एक तुंबडी में भर दिया था। रात में किसी सोनी के वहाँ रूककर दूसरे दिन सवेरे उठकर वह अपने रास्ते चल निकला । सोनी के घर में जहाँ जहाँ तुंबडी में रहे हुए रस के छींटे गिरे थे । वे सभी वस्तुयें सोने की बन गई थी । इस घटना का ख्याल आते ही सोनी ने तात्कालिक उस बाबा को खोजने का प्रयत्न किया । परन्तु उस बाबा का कुछ भी पता नहीं लगा ।

(१७) महादुःखमय ऐसे संसार में रोग से पीडित कोई मनुष्य आत्महत्या करने के लिए अंबाजी की टूंक से नीचे गिरा । परन्तु नसीब के योग से किसी हरडे के पेड के नजदीक गिरने से वह कुछ समय तक वहीं पडा रहा । तब हरडे के पेड की असर से उसको बार बार शौचादि होने से उसके सभी रोग दूर हो गये । यह बात उसने जुनागढ के उस वक्त के गोरजी लाधाजी जयवंतजी के गुरु को कही । तब उन्होंने भी वह हरडे लाकर के नवाब साहेब की दवाई में उसका उपयोग किया। कुछ ही समय में नवाब साहेब का दीर्घकालीन रोग भी गायब हो जाने से उन्होंने तंदुरस्त स्वास्थ्य को प्राप्त किया था)

(१८) एकबार कुछ यात्री लोग गिरनार में रास्ता भूल गये थे । तब वे किसी योगी की गुफा के पास में आ पहुँचे । योगी महात्मा ने उनको सांत्वना देकर किसी पेड के पत्ते खाने के लिए दिये । वो पत्ते उनको पापड जैसे लगे और उससे उनकी भूख शांत हो गई । उसके बाद योगी ने उनके ऊपर पट्टे बांधकरके किसी रास्ते पर खुले छोड दिये । तब वे स्वाभाविक ही अपने स्थान पर वापिस पहुँच गये थे । दूसरे दिन जब उन यात्रिकों के उस गुफा की खोज की तब उनको वह स्थान दिखाई नहीं दिया ।

(१९) एकबार एक लकडहारे ने रतनबाग में किसी बंदर को कुल्हाडी मारी । वह कुल्हाडी योगानुयोग कोई कुंड में गिरने से सोने की हो गई । उस स्थान की खास निशानी रखकर लकडहारा दूसरे दिन वह स्थान ढूँढने लगा । तब अपना किया हुआ निशान नहीं मिलने से वह रास्ता भूल गया था ।

(२०) काली देहरी के आगे की पहाडी को 'वाल्मिकी ऋषि की टेकरी' कहते हैं । उस स्थान से आगे जटाशंकर जाने का रास्ता आता है । उस मार्ग में प्रथम 'पूतलीओं गालों' नाम की जगह आती है, उस स्थान पर चावल के आकार के पत्थर देखने को मिलते हैं ।

(२१) गब्बर अथवा गध्धेसिंह का पर्वत पाँचवीं टूंक के नैऋत्य कोने में है । वहाँ शाश्वती प्रतिमायें हैं । परन्तु उसमें कुंज द्रुह नामक है झरना उसको 'तांतणीयो धरो' भी कहा जाता है । अगाध होने से उसका कोई पार नहीं आता । इसलिए उन शाश्वती प्रतिमाओं के स्थान तक कोई पहुँच नहीं सकता । यह 'तांतणीयों धरो' बीलखा तरफ जाकर होजत में मिलता है ।

(२२) गब्बर और दातार के पर्वत के बीच नवनाथ, ८४ सिद्ध की पहाडी है । जिसको अभी 'टगटगीआ का डुंगर' कहते हैं। इस टगटगीआ के डुंगर से रत्नेसर और वहाँ से काली के मुकाम पर जाया जाता है । इस पर्वत पर पहले बहुत से अघोरी रहते थे ।

(२३) गिरनार के मार्ग में आए हुए दामोदर कुंड के पानी में डाली हुई हड्डियाँ अपने आप पिघल जाती है । और उसमें भस्म डालने में आए तो भी वह पानी शुद्ध का शुद्ध ही रहता है ।

(२४) गिरनार के सहसावन की तरफ खोखले आम के वृक्ष के पास में एक झरना बहता था । एक मनुष्य उस झरने का पानी लेने के लिए नीचे झुका लेकिन जब वापिस खडा होता है तब एक महाकाय मानव जैसी आकृति उसके सामने देखकर अट्टहास कर रही थी । वह दृश्य देखकर के वह मनुष्य घबराकर वहाँ से भाग गया ।

(२५) गिरनार में ऐसी वनस्पति है जिसकी जड़ों को पका करके खीचडी बनाकर खाने से छ-छ महिने तक मनुष्य की भूख खत्म हो जाती है ।

(२६) गिरनार में एक ऐसी वनस्पति है जिसमें से दूध निकलता है । उस दूध की ३-४ बूँद अपने सादे दूध में डाल दी जाए तो पाँच मिनीट में ही वह दही बन जाता है ।

(२७) एक बार यात्री लोग गिरनार चढ रहे थे । तब सवेरे के समय में कोई झाडी की डाली तोडकर दंतमंजन करने लगा और थोडे ही समय में उसके सभी दाँत गिर गये ।

(२८) जुनागढ गाम के एक श्रावक तथा उसका मित्र रतनबाग की तरफ जानेवाले मार्ग पर आगे बढ़ रहे थे । वहाँ सामने आयी हुई झाड़ी को हाथ से थोडी दूर करने का प्रयास करता है तभी उस डाली ने मानों किसी का हाथ न हो ! उस तरह से उस व्यक्ति के मुख पर जोर से तमाचा मारा, तब उसके आगे के चार दाँत गिर गये थे ।

(२९) गिरनार में कोई यात्रिक रास्ता भूल गया होगा । तब उसको सामने ही कोई संन्यासी मिला और पूछा, 'बेटा ! क्या रास्ता भूल गया है ? उसके हाँ कहने पर वह उसको अपने पीछे पीछे ले गया । और एक शिला को हाथ से खिसकाने पर अंदर एक गुफा थी । अंदर जाकर अपनी लब्धि से भोजन हाजिर करके वह यात्रिक को खिलाता है । फिर उस यात्रिक को चलने के लिए कहता है । आगे आगे चलने पर दो दिन के बाद उपलेटा गाँव के पास बाहर निकला था ।

(३०) एक यात्रिक मार्ग भूल जाने से चिंतीत हो जाता है । तब एक शृंगार सजी हुई एक स्त्री उसको मार्ग दिखाती है । वह आगे चलने लगती है तब उसको आगे मार्ग दिखाई देता है । उस समय पीछे देखने पर वह शृंगार सजी हुई स्त्री अदृश्य हो गई थी ।

ऐसी अनेक बातें इस महाप्रभावक, चमत्कारी गिरनार गिरिवर के इतिहास के साथ जुड़ी हुई है ।

श्री गिरनार महातीर्थ की ९९ यात्रा की विधि

श्री गिरनार महातीर्थ जहाँ भूतकाल में अनंत तीर्थंकरों के कल्याणक, वर्तमान चौवीशी के बाईसवें बालब्रह्मचारी नेमिनाथ परमात्मा के दीक्षा-केवलज्ञान और मोक्ष कल्याणक के द्वारा यह पुनित भूमि पावनकारी बनी हुई है । आनेवाली चौवीशी के २४ तीर्थंकर मोक्ष जाने वाले है । इस महातीर्थ की ९९ यात्रा की विधि के लिए शास्त्रों में विशेष कोई उल्लेख नहीं आता है । परन्तु पश्चिम भारत में तीर्थंकर के मात्र ये तीन कल्याणक ही होने से इस महाकल्याणकारी भूमि के दर्शन-पूजन और स्पर्शन द्वारा अनेक भव्यजन आत्मकल्याण की आराधना में विशेष वेग ला सके उसके लिए पुष्ट आलंबन स्वरूप गिरनार गिरिवर की ९९ यात्राओं का आयोजन किया जाता है । वर्तमान परिस्थिति को अनुलक्ष में रखकर नीचे अनुसार यात्रा कर सकते हैं ।

गिरनार के पाँच चैत्यवंदन तथा ९९ यात्रा की समझ :

(१) जय तलहटी में आदिनाथ भगवान के जिनालय में ।

(२) जय तलहटी में नेमिनाथ परमात्मा की चरण पादुका के सामने ।

(३) फिर यात्रा करके दादा की प्रथम टूंक में मूल नायक ।

(४) मुख्य देरासर के पीछे आदिनाथ के मंदिर में ।

(५) अमिझरा पार्श्वनाथ का चैत्यवंदन करना अथवा नेमिनाथ भगवान की चरणपादुका के सामने । वहाँ से सहसावन (दीक्षा-केवलज्ञान कल्याणक), अथवा जय तलहटी आने पर प्रथम यात्रा पूर्ण हुई कहलाती है । फिर वापिस जय तलहटी से अथवा सहसावन से ऊपर चढते समय पूर्व अनुसार दो चैत्यवंदन करना । इस तरह दोनों में से किसी भी स्थान से पुनः दादा की टूंक के दर्शन चैत्यवंदन करके इन दोनों में से किसी भी स्थान से नीचे उतरने पर दूसरी यात्रा गिनी जाएगी। क्रमशः इसके अनुसार १०८ बार दादा की टूंक की स्पर्शना करनी आवश्यक हैं ।

नित्य आराधना :

(१) सुबह-शाम प्रतिक्रमण.

(२) जिनपूजा तथा कम से कम एक बार दादा का देववंदन.

(३) कम से कम एकाशन का पच्चक्खाण.

(४) भूमि सयन ।

(५) दरेक यात्रा में मूलनायक की ३ प्रदक्षिणा ।

(६) ''उज्जित सेलसिहरे दीक्खा नाणं निस्सीहीआ जस्स, तम् धम्म चक्क वट्टीं अरिट्ठनेमिं नमंसामि'' अथवा ''ॐ ह्रीँ श्री नेमिनाथाय नमः' की २० नवकारवाली ।

(७) श्री रैवतगिरि महातीर्थ आराधनार्थ----'' संपूर्ण ९ लोगस्स का काउस्सग्ग ।

(८) गिरनार महातीर्थ के ९ खमासमण ।

९९ यात्रा दरम्यान १ बार मूलनायक दादा की १०८ प्रदक्षिणा / १०८ लोगस्स का काउस्सग्ग / पूरे गिरनार गिरिवर की प्रदक्षिणा (लगभग २८ कि.मी.) ।

९ बार पहली टूंक के हरएक देरासर के दर्शन ।

१ बार चोविहार छठ करके सात यात्रा ।

यात्रा दौरान एक बार गजपद कुंड के जल से स्नान करके परमात्मा की पूजा करनी ।

गिरनार गिरिवर की ९९ यात्रा किस तरह करोगे ?

गिरनार की ९९ यात्रा से आप घबरा गये ? उसमें घबराने की कोई जरूरत नहीं है- हकीकत में शत्रुजय की ९९ यात्रा से तो गिरनार की ९९ यात्रा एकदम सरल है ।

हा ! हा ! उसमें आश्चर्य पाने की जरूरत नहीं है ।

शत्रुंजय की प्रथम यात्रा में लगभग ३६०० सीढियाँ होती है, गिरनार की पहली यात्रा में लगभग ३८४० सीढियाँ होती है।

शत्रुंजय में दूसरी यात्रा के लिए धेटीपाग की २८०० सीढियाँ उतरनी पडती है जबकि गिरनार में दूसरी यात्रा के लिए १००० सीढियों के डिस्काउन्ट के साथ सहसावन तक मात्र १८०० सीढियाँ ही उतरनी पडती है ।

शत्रुंजय की तीन यात्रा में जितनी सीढियाँ होती है उससे कम सीढियों में गिरनार की तो चार यात्रा हो जाती है अर्थात् गिरनार की ९९ यात्रा बहुत ही कठिन है वैसा थोड़ा भी भय मत रखना ।

कोई भी डर रखे बिना गिरनार की यह ९९ यात्रा का अमूल्य अवसर चुकना मत ।

सज्जनो ! सुनलो मेरी पुकार

महाभाग्यवान् !

जगप्रसिद्ध गिरनार महातीर्थ की इस अचिन्त्य महिमा को जानकर चलो ! आज ही संकल्प करे कि वर्षों से चतुर्विध संघ में अज्ञात रहे हुए गिरनार के माहात्म्य की बातों को सरोवर के जल के समान एक ही स्थान में संग्रह नहीं करके, नदी के जल की तरह बहती रखने से उसकी महिमा घट-घट और घर घर में फैलने लगेगी । जग में सर्व श्रेष्ठ तीर्थ रूप स्थान प्राप्त किए हुए इस तीर्थ के पुनः उदय के लिए आज से ही सब जीवों को इस तीर्थयात्रा और तीर्थ भक्ति में जोडने के लिए प्रबल पुरुषार्थ करें ! जो अपने को निकट मोक्ष गामी बनाने में सहायक होगा ।

अंत में ! हर वर्ष में कम से कम एक बार तो गिरनार महातीर्थ की यात्रा करने का संकल्प जरूर करें।

चलो ! झंखनाओं के झरने में म्हाले ।

◈ मैं गौरवशाली गढगिरनार की यात्रा कब करूँगा ?
◈ मैं वर्तमान में विश्व की प्राचिनतम श्री नेमिनाथ परमात्मा की प्रतिमा के दर्शन कब करूँगा ?
◈ मैं अनंत तीर्थंकरों की दीक्षा अवसर के वैराग्य से सुवासित बनी हुई भूमि की महक कब मानुंगा ?
◈ मैं अनंत तीर्थंकरों के सिद्धपद की भूमि के आलंबन से शाश्वत पद की साधना कब करूँगा ?
◈ मैं सिद्धक्षेत्र ऐसे गिरनार की ९९ यात्रा तथा चातुर्मासादि आराधना कब करूँगा ?
◈ मैं गिरनार गिरिवर का गिरिपूजन कब करूँगा ?
◈ मैं चउविहार छट्ठ करके गिरनार की सात यात्रा कब करूँगा ?
◈ मैं इस अनंत तीर्थंकरों की मोक्षकल्याणक भूमि से मोक्ष में कब जाऊँगा ?
◈ मैं इस महातीर्थ की यात्रा द्वारा अनादि भवों के पापकर्मों का क्षय कब करूँगा ?

रेल्वे समय-तालिका / मुंबई से जुनागढ

ट्रेन नंबर	ट्रेन का नाम	बोरीवली	वाया अहमदाबाद	वाय राजकोट	जुनागढ
१) ९००५	सौराष्ट्र मेल	रात के ९-१६ घ.	.....	.....	दूसरे दिन दोपबर १-२५ घ.
२) ९०१७	सौराष्ट्र जनता एक्सप्रेस	शाम ६-१४ घ.	....	दूसरे दिन सुबह ७-४५ घ.	वाया बस/टेक्सी
३) २९३३	कर्णावती एक्सप्रेस	दोपहर २-१७ घ.	रात ९.२५ (**वाया सोमनाथ मेल**)	......	दूसरे दिन सुबह ५-२६ घ.
४) २४८०	सूर्यनगरी एक्सप्रेस	दोपहर २-०० घ.	रात ९-३० घ. (वाया सोमनाथ मेल)	....	दूसरे दिन सुबह ५-२६ घ.
५) ९२२१	सोमनाथ मेल	.....	रात १०-०० घ.	......	सुबह ५-२६ घ.

जुनागढ से अहमदाबाद

ट्रेन नंबर	ट्रेन का नाम	जुनागढ	वाया अहमदाबाद	वाय राजकोट	बौरीवली
१) १४६३	सोमनाथ जे.बी.पी. एक्स.	सुबह ११-३० घ.	.....	शाम ६-२५ घ.	.....
अहमदाबाद से मुंबई आनेवाली कोई भी ट्रेन आप पकड सकते हो । (लोकशक्ति एक्स., गुजरात मेल, एरावली एक्स.)					
२) ९२२२	सोमनाथ एक्सप्रेस	रात ९-१७ घ.	.....	दूसरे दिन सुबह ४-०० घ.	......
अहमदाबाद से मुंबई आने के लिए सुबह की कोई ट्रेन भी आप पकड सकते हो ।					
३) २९३४	कर्णावती एक्सप्रेस	.....	.....	सुबह ४-५५ घ.	सुबह ११-४६ घ.
४) ९०१२	गुजरात एक्सप्रेस	.....	.....	सुबह ७-००	दोपहर ३-२५ घ.

जुनागढ से मुंबई

१) २६०	वेरावळ दादर एक्सप्रेस	दोपहर २-४३ घ.	सौराष्ट्र मेल में	.....	दूसरे दिन सुबह ६-०१ घ.
२) ९०१८	सौराष्ट्र जनता	.....	दोपहर ३-१५ घ.	.....	सुबह ४-५० घ.
३) ९००६	सौराष्ट्र मेल	.....	शाम ५-४० घ.	.....	दूसरे दिन सुबह ६-१० घ.

पूज्य साधु-साध्वी भगवंतो के लिए विहारपथ

१) पालीताणा-गारियाधार-अमरेली-बगसरा-जुनागढ-१८०कि.मी.

२) पालीताणा-महुवा-अजाहरा-उना-प्रभासपाटण-वेरावल-मांगरोल-वंथली-जुनागढ } लगभग ३६० कि.मी.

३) पालीताणा-गारियाधार-लाठी-चित्तल-जेतपुर-जुनागढ-२१०कि.मी.

४) पालीताणा-लाठी-बाबरा-आटकोट-गोंडल-जेतपुर-जुनागढ-२२५कि.मी.

५) राजकोट-गोंडल-जेतपुर-जुनागढ - १०२ कि.मी.

६) जामनगर-कालावाड-जामकंडोरणा-धोराजी-जुनागढ - १२५ कि.मी.

७) जामनगर-आराधनाधाम-जामखंभालीया-पोरबंदर-बलेज-मांगरोल-वंथली-जुनागढ } लगभग १६० कि.मी.

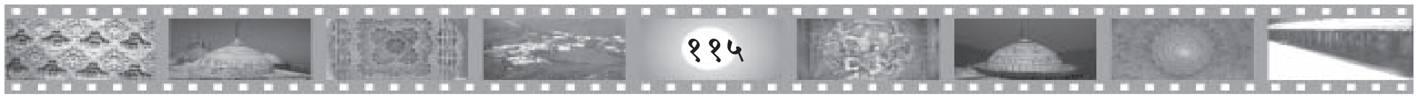

जुनागढ आसपास में आयेल तीर्थ (जुनागढ से की.मी.)

श्री जामनगर तीर्थ : (125 की.मी.)
शेठ श्री रायसिंह वर्धमान जैन पेढी,
जामनगर-361001
फोन : 0288-2687923
विशाश्रीमाली तपागच्छ जैन धर्मशाला,
फोन : 2679916
कुंवरबाई जैन धर्मशाला
फोन : 2679916

श्री गिरनारजी तीर्थ : (7 की.मी.)
श्री देवचंद लक्ष्मीचंद ट्रस्ट
उपरकोट रोड, जगमाल चोक,
बाबुका वंडा, जैनधर्मशाला
मु.पो. जुनागढ
फोन : 0285-2650179
तलेटी (पेढी) 2620059

श्री वंथली तीर्थ : श्री शितलनाथ
भगवान जैन श्वे. मंदिर : (20 की.मी.)
श्री वंथली तपागच्छ जैन संघ
आझाद चोक, मु.पो. वंथली-362610
जि. जुनागढ
फोन : 02872-222264

श्री हालाराधाम आराधना भवन,
मु.पो. वडालियासिंहण,
ता. जामखंभालीया, जि. जामनगर
फोन : 02833-254063
254156/57/58

श्री शियाणी तीर्थ :
श्री शियाणी जैन संघ,
मु.पो. शियाणी, ता. लिंबडी,
जि. सुरेन्द्रनगर-363421
फोन : 02753-251550

श्री चोरवाड तीर्थ (75 की.मी.)
श्री चिंतामणी पार्श्वनाथ जैन
देरासर पेढी, मु.पो. चोरवाड,
जि. जुनागढ
फोन : 02734-267320

श्री वेरावळ तीर्थ (95 की.मी.)
श्री जैन श्वे. मू. पू. संघ मायलाकोट
मु.पो. वेरावळ, जि. जुनागढ,
फोन : 0287-221381

श्री देलवाडा तीर्थ (180 की.मी.)
श्री अजाहरा पार्श्वनाथ पंचतीर्थ पेढी,
मु.पो. देलवाडा-365510
वाया - उना, जि. जुनागढ

श्री उपरीयाजी तीर्थ :
शेठ श्री आणंदजी कल्याणजी पेढी
मु.पो. उपरीयाजी-382765
ता. पाटडी, जि. सुरेन्द्रनगर
फोन : 02757 - 226826

पाटणवाव (39 की.मी.)
बलेज पार्श्वनाथ (100 की.मी.)
नागेश्वर पार्श्वनाथ, राजकोट (100 की.मी.)

श्री प्रभासपाटण तीर्थ (100 की.मी.)
श्री प्रभास पाटण जैन श्वे. मू. संघ,
जैन देरासरनी शेरी,
मु.पो. प्रभासपाटण-362268
जि. जुनागढ
फोन : 02876-231638

श्री उना तीर्थ (170 की.मी.)
श्री अजाहरा पार्श्वनाथ जैन पेढी,
वासा चोक, मु.पो. उना-362560
जि. जुनागढ
फोन : 222233

श्री अजाहरा तीर्थ (175 की.मी.)
श्री अजाहरा पार्श्वनाथ पंचतीर्थ
जैन पेढी, मु. अजाहरा-362510
वाया - देलवाडा, जि. जुनागढ,
फोन : 269355

श्री दीव तीर्थ (188 की.मी.)
श्री अजाहरा पार्श्वनाथ पंचतीर्थ जैन पेढी,
मु.पो. दीव-365520
वाया - उना, जि. जुनागढ

जुनागढ में स्थिरता करने के लिए उपलब्ध व्यवस्था के संपर्क सूत्र

बाबुनो वंडो धर्मशाला
(शेठ श्री देवचंद लक्ष्मीचंद पेढी संचालित)
उपरकोट, जगमाल चोक, जुनागढ,
गिरनार पर्वत से ६ की.मी. दूर
जुनागढ की पेढी - ०२८५-२६५०१७९

श्री नेमिजिन यात्रिक भवन
गिरनार तलेटी, गिरनार-जुनागढ
फोन : ०२८५-२६२०५१

शेठश्री देवचंद लक्ष्मीचंद तलेटी की पेढी,
गिरनार-तलेटी,
बंडीलाल दिगम्बर धर्मशाला के सामने,
गिरनार-जुनागढ
तलेटी की पेढी - ०२८५-२६२००५९
फोन : पहाड पर - ०२८५-२९०२७५४
सहसावन जुनागढ पेढी - ०२८५-२६२२९२४

इस गिरनार तीर्थ की पहली टूंक पर १४-१४ नयनरम्य जिनालय हैं । महाप्रभावक गजपद कुंड है । सहसावन में नयनरम्य समवसरण मंदिर तथा भाता की व्यवस्था है । अन्य टूंको में भगवान की तथा शांब-प्रद्युम्न की चरण पादुकायें बिराजमान हैं ।

सोरठ देशमां संचर्यो, न चढियो गढगिरनार;
सहसावन फरश्यो नहीं, एनो एले गयो अवतार.

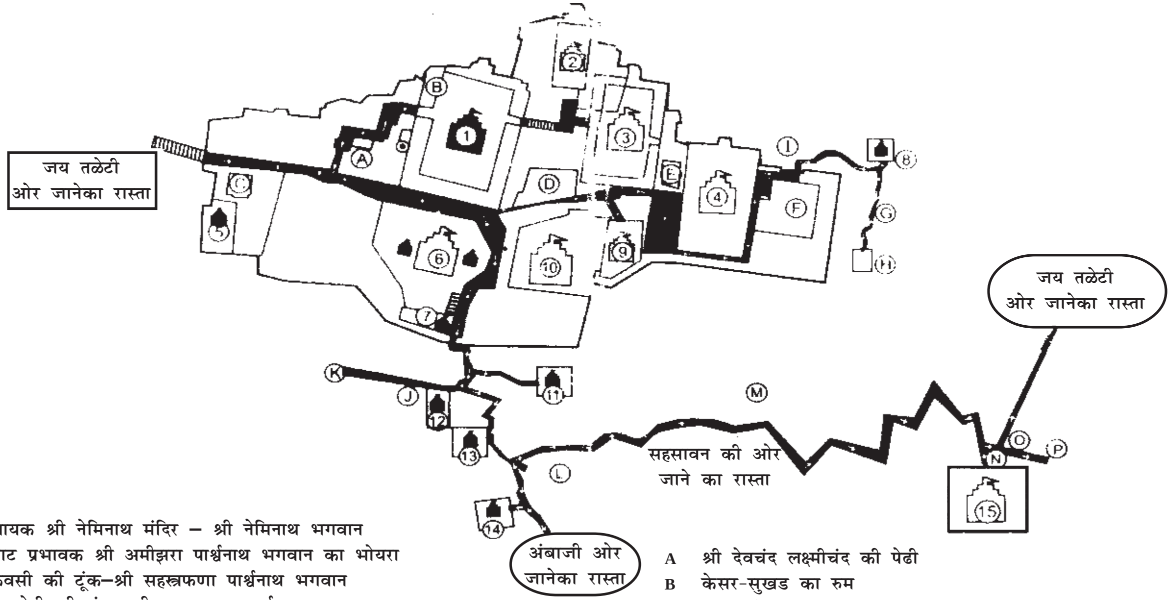

1. मूळनायक श्री नेमिनाथ मंदिर – श्री नेमिनाथ भगवान
   • प्रगट प्रभावक श्री अमीझरा पार्श्वनाथ भगवान का भोयरा
2. मेरकवसी की टूंक–श्री सहस्त्रफणा पार्श्वनाथ भगवान
3. संग्रामसोनी की टूंक–श्री सहस्त्रफणा पार्श्वनाथ भगवान
4. कुमारपाळ महाराजा की टूंक–श्री अभिनंदनस्वामि भगवान
5. मानसंग भोजराज की टूंक–श्री संभवनाथ भगवान
6. वस्तुपाल-तेजपाल की टूंक–श्री शामळापार्श्वनाथ भगवान
7. गुमास्ता की टूंक–श्री संभवनाथ भगवान
8. चंद्रप्रभ की टूंक–श्री चंद्रप्रभ स्वामि
9. ज्ञानवाव का देरासर–श्री संभवनाथ भगवान
10. संप्रति महाराज की टूंक–श्री नेमिनाथ भगवान
11. धरमशी हेमचंद का देरासर–श्री शांतिनाथ भगवान
12. मलवाळा देरासर – श्री शांतिनाथ भगवान
13. चौमुखजी का देरासर – श्री नेमिनाथ भगवान
14. रहनेमि का देरासर – श्री रहनेमि भगवान
15. श्री सहसावन कल्याणक भूमि-दीक्षा-केवलज्ञान कल्याणक की प्राचीन देरी, समवसरण मंदिर

A श्री देवचंद लक्ष्मीचंद की पेढी
B केसर-सुखड का रुम
C सुरज कुंड
D डॉक्टर कुंड
E गिरधर कुंड
F भीम कुंड
G गजपद कुंड
H नवो कुंड
I श्री नागीमाता की देरी
J राजुल की गुफा
K प्रेमचंद की गुफा
L गौमुखी गंगा-२४ तिर्थंकर भगवान के चरणें
M भैरव जप
N सहसावन तिर्थोद्धारक-आचार्यदेव श्री हिमांशुसूरि म.सा.की अंतिमसंस्कार भूमि
O केवलज्ञान कल्याणक की प्राचीन देरी
P दीक्षा कल्याणक की प्राचीन देरी